श्रीः ।

श्रीमहाभारतान्तर्गता-

श्रीमद्भगवद्गीता.

अन्वयाङ्क-दोहा-भाषाटीकासहिता ।

सा च

खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

संवत् १९५७, शके १८२२.

प्रस्तावना।

श्लोकः--गीतामे चोत्तमं स्थानं गीतामे परमं गृहम्।
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम्॥ १॥

यह सम्पूर्ण वैराग्य, ज्ञान विज्ञान, योगादिका सारभूत जीवन्मुक्तिद्वार परमोदार गीताग्रंथ जिसे भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचंद्रजीने निज मुखसे वर्णन कियाहै कि दो०--"गीता मम उत्तम सुथल, गीता मम पर धाम। गीता ज्ञान शरीर तें, पालत सब जग श्याम"। वही परमहंस विज्ञानी महात्माओं का सर्वस्वधन गीता ग्रंथ जो कि दूसरीबार छप चुका है इस बार फिर अत्युत्तमतासे हरिवल्लभजीकृत दोहा व पंडित रघुनाथ प्रसाद कृत अन्वय व भाषाटीका सहित सुंदर पुष्ट अक्षरोंसे छापा गया है विशेष प्रशंसा हम क्यों करें ग्रंथावलोकनसे स्पष्ट मालूम होजायगा. "हाथ को कंगन आरसी क्या"?

आपका कृपाकांक्षी-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई.

युद्ध प्रसंग
अर्जुन

व्यासजी
शिष्य मंडली
धृतराष्ट्र
संजय

इस मूर्तिमें अंक डालनेका मतलब ये है कि जोजो अध्यायके जोजो अंग हैं उन अंगोंमें उन अध्यायोंके अंक लिखे हैं.

तप लोक
जीवलोक
महर्लोक
इंद्रादिदेवों के स्थान
आकाश
स्वर्ग
भूर्लोक
अतल
वितल
अर्जुन
सुतल
महातल
रसातल
नलातल
पाताल

श्रीः ।

अथ श्रीगीतामाहात्म्यम् ।

(भाषाटीकासमेतम्.)
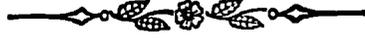
ऋषिरुवाच ।

गीतायाश्चैव माहात्म्यं यथावत्सूत मेवद ॥
पुराणमुनिना प्रोक्तं व्यासेन श्रुतिनोदितम् ॥ १ ॥

श्रीर्जयति ॥ नत्वा रामानुजं कृष्णं गीताचार्यं जगद्गुरुम् ॥
गीतामाहात्म्यसद्व्याख्यां कुर्वे प्राकृतभाषया ॥ १ ॥

अनेकप्रकारकी कथा सुनते सुनते शौनकऋषि सूतजीसे प्रश्न करतेभये कि, हे सूत ! जो श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य श्रीव्यासजीने कहा है सो यथावत् मेरेको कहो ॥ १ ॥

सूत उवाच॥पृष्टं वै भवता यत्तन्महद्गोप्यं पुरातनम्॥
न केन शक्यते वक्तुंगीतामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २ ॥

शौनकका प्रश्न सुनके सूतजी बोले कि, जो तुमने मेरेसे पूँछा यह अतिगोप्य प्राचीन है. अतिउत्तम यह गीताका माहात्म्य किसीकरके भी कहनेमें नहीं आता है ॥ २ ॥

कृष्णो जानाति वै सम्यक् कचित्कौंतेय एव च ॥
व्यासो वा व्यासपुत्रो वा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः॥३॥

सम्यक् प्रकारसे तो कृष्णही जानते हैं और किंचित् अर्जुन तथा व्यासजी, शुकदेवजी, याज्ञवल्क्य अथवा जनक जानते हैं ॥ ३ ॥

अन्ये श्रवणतः श्रुत्वा लोके संकीर्त्तयंति च ॥
तस्मात्किंचिद्वदाम्यद्य व्यासस्यास्यान्मया श्रुतम्४

और जन कानोंसे सुनके लोकमें वर्णन भी करते हैं, परंतु जानते नहीं हैं, इसते जैसा मैंने श्रीव्यासजीके मुखारविंदसे सुना है वैसा कुछ थोड़ा कहूंगा ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ॥
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत् ॥५॥

सर्व उपनिषदें तो गऊरूप होतीभई; दुहनेवाले श्रीकृष्ण और बछरारूपी अर्जुन प्रथम पान करतेभये. पीछे यह गीता रूप दूध अतिमिष्ट लोकमें प्रवर्त्त करतेभये ॥ ५ ॥

सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ ॥
सर्वलोकोपकारार्थं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ ६ ॥

जो भगवान् प्रथम अर्जुनका सारथिपना करते करते सर्वलोकोंके उपकारके वास्ते अर्जुनको गीतारूप अमृत देते भये ऐसे आप श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥

संसारसागरं घोरं तर्त्तुमिच्छति यो जनः ॥
गीतानावं समारुह्य परं यातु सुखेन सः ॥ ७ ॥

जो संसारघोरसागर तरना चाहता हो, वह गीतारूपी नावपर बैठके सुखसे पार पाता है ॥ ७ ॥

गीताज्ञानं श्रुतं नैव सदैवाभ्यासयोगतः ॥
मोक्षमिच्छति मूढात्मा याति बालकहास्यताम् ॥८॥

जिसने गीतासंबंधी ज्ञान सदा अभ्यासयोगसे नहीं सुना है और वह मूर्ख मोक्ष चाहता है तो वह बालकोंकरके उपहासको प्राप्त होता है ॥८॥

ये शृण्वंति पठंत्येव गीताशास्त्रमहर्निशम् ॥
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवा एव न संशयः ॥ ९ ॥

जो रातदिन गीता पढते और सुनते हैं वे मनुष्य नहीं, देवताही हैं ऐसे जानना, यहां संशय नहीं ॥ ९ ॥

गीताज्ञानेन संबोध्य कृष्णः प्राह तमर्जुनम् ॥
अष्टादशपदस्थानं गीताध्याये प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनको गीताके ज्ञानसे प्रबोधिके बोले कि, इस गीताके एकएक अध्यायमें अष्टादशपद जो विष्णु उनका स्थान जो परमपद सो स्थापित किया है ॥ १० ॥

मोक्षस्थानं परं पार्थ सगुणं वाथ निर्गुणम् ॥
सोपानाष्टादशैरेवं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! सगुण अथवा निर्गुण स्वइच्छाप्रमाण मोक्षस्थानपर इन अठारह अध्यायरूप सोपानोंकरके परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिनेदिने ॥
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥ १२ ॥

जो दिनदिनप्रति जलस्नान है सो शरीरमलका नाशक है और इस-गीतारूप जलका स्नान संसारदुःखरूप मलका नाशक है ॥ १२ ॥

गीताशास्त्रस्य जानाति पठनं नैव पाठनम् ॥
परस्मान्न श्रुतं ज्ञानं नैव श्रद्धा न भावना ॥ १३ ॥
स एव मानुषे लोके पुरुषो विड्वराहकः ॥
यस्माद्गीतां न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥१४॥

जो गीताशास्त्रका पढना पढाना नहीं जानता है, न दूसरेसे सुना, न जिसके श्रद्धा है और न भावना है वह पुरुष इसलोकमें ग्रामसूकरके समान है; क्योंकि जिससे वह गीता नही जानता है इसीसे उसके सिवाय दूसरा अधम नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

धिक्तस्य मानुषं देहं धिग्ज्ञानं धिक्कुलीनताम् ॥
गीतार्थं न विजानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १५ ॥

जो गीतार्थको नहीं जानता है उसके मनुष्यदेहको, ज्ञानको और कुली-नताको धिक्कार है और, उससे अधिक कोई अधम नहीं है ॥ १५ ॥

धिक्सुरूपं शुभं शीलं विभवं सद्गृहाश्रमम् ॥

गीताशास्त्रं न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १६ ॥

जो गीताशास्त्रको नहीं जानता है उसके सुंदररूपको, सुंदरशीलको, विभवको और श्रेष्ठगृहाश्रमको धिक्कारहै और उससे अधिक अधम दूसरा नहीं है ॥ १६ ॥

धिक्प्रागल्भ्यं प्रतिष्ठां च पूजां मानं महात्मताम् ॥
गीताशास्त्रे रतिर्नास्ति तत्सर्वं निष्फलं जगुः ॥१७॥

जिसकी गीताशास्त्रमें प्रीति नहीं उसकी हिम्मत, प्रतिष्ठा, पूजा, मान और महात्मापनेको धिक्कार है और उसका सर्व निष्फल है ॥ १७ ॥

धिक्तस्य ज्ञानमाचारं व्रतं चेष्टां तपो यशः ॥
गीतार्थपठनं नास्ति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १८ ॥

जिसके गीतार्थका पठन नहीं है उसके ज्ञानको तथा आचार, व्रत, चेष्टा, तप और यशको धिक्कार है उससे अधिक कोई जन अधम नहीं है ॥१८॥

गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद्विद्ध्यासुरसंज्ञकम् ॥
तन्मोघं धर्मरहितं वेदवेदांतगर्हितम् ॥ १९ ॥

जो ज्ञान गीताका गाया नहीं है उसज्ञानको आसुरी ज्ञान जानना. वह व्यर्थ और धर्मरहित तथा वेदवेदांतकरके निंदित है ॥ १९ ॥

यस्माद्धर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता तस्माद्गीता विशिष्यते ॥ २० ॥

जिसवास्ते कि, गीता धर्ममयी और सर्वज्ञानोंकी प्रवर्त्तकरनेवाली है और सर्वशास्त्रमयी है; ऐसा कहा है, उससे गीता सबशास्त्रोंसे श्रेष्ठ है॥ २०॥

योऽधीते सततं गीतां दिवा रात्रौ यथार्थतः ॥
स्वपन्गच्छन्वदंस्तिष्ठञ्छाश्वतं मोक्षमाप्नुयात्॥२१॥

जो निरंतर रातिदिन अर्थसहित गीताको सोते, चलते, बोलते, खडे भी पढते रहते हैं वे सनातन मोक्षको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥

शालग्रामशिलाग्रे तु देवागारे शिवालये ॥
तीर्थे नद्यां पठेद्यस्तु वैकुंठं याति निश्चितम् ॥ २२ ॥

शालग्रामके संमुख देवमंदिरमें, शिवालयमें, तीर्थमें और नदीकिनारे जो गीताको पढता है सो निश्चय वैकुंठको जाताहै ॥ २२ ॥

देवकीनंदनः कृष्णो गीतापाठेन तुष्यति ॥
यथा न वेदैर्दानैश्च यज्ञतीर्थव्रतादिभिः ॥ २३ ॥

जैसे श्रीदेवकीनंदन कृष्ण गीतापाठसे संतुष्ट होते हैं, वैसे वेदपाठ, दान, यज्ञ, तीर्थ और व्रतादिकोंसे नहीं संतुष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

गीताऽधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा ॥
तेन वेदाश्च शास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥ २४ ॥

जिसने भक्तिभावपूर्वक चित्त लगाय गीताका अध्ययन किया वह सर्व वेद, शास्त्र और पुराणभी पढचुका ॥ २४ ॥

योगिस्थाने सिद्धपीठे शिष्टाग्रे सत्सभासु च ॥
यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन्याति परां गतिम् ॥ २५ ॥

योगीके स्थानमें, विंध्येश्वरी इत्यादि सिद्धपीठमें, श्रेष्ठपुरुषके संमुख साधु सभामें,यज्ञमें और विष्णुभक्तके संमुख पाठ करनेसे जन मोक्ष पाताहै॥ २५॥

गीतापाठं च श्रवणं यः करोति दिनेदिन ॥
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥ २६ ॥

जो दिनदिन प्रति गीताका पाठ और श्रवण करताहै वह सबअग्निष्टो-मादिक और अश्वमेधादिक दक्षिणासहित यज्ञकरचुका ॥ २६ ॥

यः शृणोति च गीतार्थं कीर्त्तयेच्च स्वयं पुमान् ॥

श्रावयेच्च परार्थं वै स प्रयाति परं पदम् ॥ २७ ॥

जो गीताका अर्थ सुने और आप कहे दूसरोंको श्रवण करावे वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

गीतायाः पुस्तकं नित्यं योऽर्चयत्येव सादरम् ॥
विधिना भक्तिभावेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥

जो आदरपूर्वक नित्य गीताके पुस्तकको विधिपूर्वक भक्तिभावसंयुक्त पूजताहै उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २८ ॥

सकला चोर्वरा तेन दत्ता यज्ञे भवेत्किल ॥
व्रतानि सर्वतीर्थानि दानानि सुबहून्यपि ॥ २९ ॥

वह गीताके पूजनेवाला यज्ञमें सर्व पृथ्वी दान देचुका; तथा सर्वव्रत, सर्वतीर्थ और बहुतसे दान भी देचुका ॥ २९ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्र नो प्रविशंति वै ॥
अभिचारोद्भवं दुःखं परेणापि कृतं च यत् ॥ ३० ॥

जिस घरमें गीताका पूजन होता है वहां भूत, प्रेत, पिशाचादिक और दूसरेके किये मंत्रयंत्रादिक अभिचारज दुःख भी नहीं प्रवेश कर सकते हैं ॥ ३० ॥

नोपसर्पन्ति तत्रैव यत्र गीतार्चनं गृहे ॥
तापत्रयोद्भवा पीडा नैव व्याधिभयं तथा ॥ ३१ ॥

जिसघरमें गीताका पूजन है वहां दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंकी पीडा और रोगकृतपीडा नहीं होती है ॥ ३१ ॥

न शापं नैव पापं च दुर्गतिं न च किंचन ॥
देहेऽरयः षडेते वै न बाधंते कदाचन ॥ ३२ ॥

वहां कोईका शाप और पाप और दुर्गति कभी नहीं होती है तथा देहमें रहे जो पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन ऐसे छह शत्रु भी पीडा नहींकरते हैं ॥ ३२ ॥

भगवत्परमेशाने भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
जायते सततं तत्र यत्र गीताभिनंदनम् ॥ ३३ ॥

जहाँ गीताके अर्थका निरंतर विनोद होता है तहाँ भगवान्में अतिउत्तम अखंडभक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥

प्रारब्धं भुंजमानोऽपि गीताभ्यासे सदारतः ॥
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपबध्यते ॥३४॥

जो सर्वकाल गीताहीके अभ्यासमें निरत है वह प्रारब्धवशसे संसारभी भोगता है, तोभी वह मुक्त और सुखी है, तथा कर्मसेभी बँधनेका नहीं है ३४

महापापादिपापानि गीताऽध्यायी करोति चेत् ॥
न किंचित्स्पृशते तस्य नलिनीदलमंभसा ॥ ३५॥

जो नित्य गीताका श्रवण, पठन, मनन, करता हो और वह दैवयोगसे भूलमें ब्रह्महत्यादिक महापापभी करे तोभी जलकरके कमलपत्रवत् लिप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

स्नातो वा यदि वाऽस्नातः शुचिर्वा यदि वाऽशुचिः ॥
विभूतिं विश्वरूपञ्च संस्मरन्सर्वदा शुचिः ॥ ३६ ॥

स्नान किये होय अथवा न किये होय, पवित्र होय अथवा अपवित्र होय विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन अध्यायको पढताहुवा सदा पवित्र होताहै ३६

अनाचारोद्भव पापमवाच्यादि कृतं च यत् ॥
अभक्ष्यभक्षजं दोषमस्पर्शस्पर्शजं तथा ॥ ३७॥
ज्ञाताज्ञातकृतं नित्यमिंद्रियैर्जनितं च यत् ॥
तत्सर्वं नाशमायाति गीतापाठेन तत्क्षणात् ॥३८॥

जो अनाचारसे और जो निंदितशब्द बोलनेसे, जो अभक्ष्यभक्षणसे जो न छूने योग्यके छूनेसे, पाप भये हों; तथा जो जान और अजानमें नित्य पाप भयेहों और जो इंद्रियोंसे पाप भयेहों वे सर्व गीतापाठसे तत्काल नष्ट होते है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वत्र प्रतिभोक्ता च प्रतिग्राही च सवशः ॥
गीतापाठं प्रकुर्वाणो न लिप्येत कदाचन ॥ ३९ ॥

जो सर्वत्र भोजन करता हो सर्वप्रतिग्रह लेताहो वह भी पापों करके गीतापाठसे लिप्त नहीं होताहै ॥ ३९ ॥

रत्नपूर्णां महीं सर्वां प्रगृह्यातिविधानतः ॥
गीतापाठेन चैकेन शुद्धः स्फटिकवत्सदा ॥ ४० ॥

विधिहीन रत्नपूरित पृथिवीका दानभी लेकर एक गीतापाठसे शुद्धस्फटिकमणिवत् निष्पाप होताहै ॥ ४० ॥

यस्यांतः करणं नित्यं गीतायां रमते सदा ॥
सर्वाग्निकः सदाजापी क्रियावान्स च पंडितः ॥४१॥

जिसका अंतःकरण सदा गीतामें रमताहो वह सर्वआग्निहोत्री, सदा जप करनेवाला, क्रियावान् और पंडित है ॥ ४१ ॥

दर्शनीयः स धनवान्स योगी ज्ञानवानपि ॥
स एव याज्ञिको ध्यानी सर्ववेदार्थदर्शकः ॥ ४२ ॥

वही दर्शनयोग्य है, वही धनवान्, वही योगी, वही, ज्ञानवान्, वही याज्ञिक, वही ध्यानी और वही सर्ववेदोंके अर्थको देखनेवालाहै ॥४२॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यं पाठे प्रवत्तत ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनिभूतले ॥ ४३ ॥

गीताका पुस्तक जहां नित्य पाठमें प्रवर्त्त हो वहां पृथिवीपरके सर्व प्रयागादितीर्थ सदा रहते हैं ॥ ४३ ॥

निवसंति सदा गेहे देहदेशे सदैव हि ॥
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये ॥ ४४ ॥

और यहां घरमें और देहमेंभी सर्व देव, ऋषि, योगी और पन्नगभी सदा वसते हैं ॥ ४४ ॥

गोपालबालकृष्णोपि नारदध्रुवपार्षदैः ॥
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्त्तते ॥ ४५ ॥

जहाँ गीता प्रवर्त्त होती है तहाँ नारद, ध्रुव और सर्व पार्षदनसहित गोपाल–बालकृष्ण शीघ्रही सहाय होते हैं ॥ ४५ ॥

यत्र गीताविचारश्च पठनं पाठनं तथा ॥
तत्राहं निश्चितं पार्थ निवसामि सदैव हि ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण अर्जनसे कहते हैं कि, हे पार्थ ! जहां नित्य गीताका विचार होता है; तहां मैं निश्चय सर्वदा रहता हूं ॥ ४६ ॥

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम् ॥
गीता मे ज्ञानमत्यग्र्यं गीता मे ज्ञानमक्षयम् ॥४७॥

हे अर्जन ! गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम सार है, गीता मेरा अतिअग्रज्ञान और अक्षयज्ञानभी है ॥ ४७ ॥

गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं गृहम् ॥
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम् ॥४८॥

गीता मेरा उत्तमस्थान है और गीता मेरा उत्तम सार है, गीताके ज्ञानको धारण किये भये तीनों लोकोंको पालता हूं ॥ ४८ ॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः ॥
अर्द्धमात्राक्षरा नित्या स्वनिर्वाच्यपदात्मिका ॥४९॥

गीता मेरी उत्तम विद्या है, गीता ब्रह्मरूप है, इसमें संशय नहीं अर्द्धमात्रा,

नाशरहित, सनातन, अनिर्वाच्यपदरूप ऐसी परावाणीरूप मेरी यह गीता है ॥ ४९ ॥

गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि शृणु पांडव ॥
कीर्त्तनात्सर्वपापानि विलयं यांति तत्क्षणात् ॥५०॥

हे पांडव ! गीताके जो गुप्तनाम हैं सो मैं तुमसे कहता हूं, जिनके कीर्त्तनसे तत्काल सर्व पापक्षय होते हैं ॥ ५० ॥

अथ गीतानामानि ।

गीता गंगा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ॥
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसंध्या मुक्तगेहिनी ॥ ५१ ॥
अर्द्धमात्रा चिदानंदा भवघ्नी भवनाशिनी ॥
वेदत्रयी पराऽनंता तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी ॥ ५२ ॥
इत्येतानि जपन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथांते परमं पदम् ॥ ५३ ॥

अब गीताके नाम कहते हैं—गीता १ गंगा २ गायत्री ३ सीता ४ सत्या ५ सरस्वती ६ ब्रह्मविद्या ७ ब्रह्मवल्ली ८ त्रिसंध्या ९ मुक्तगेहिनी १० अर्द्धमात्रा ११ चिदानंदा १२ भवघ्नी १३ भयनाशिनी १४ वेदत्रयी १५ परा १६ अनंता १७ तत्वार्थज्ञानमञ्जरी १८ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ गीताके इन अठारह नामोंको नित्य मन स्थिर करके जपता रहै तो शीघ्रही ज्ञानसिद्धिको प्राप्त होके अंतमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत् ॥
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

जो संपूर्ण पाठ न करसकै तो आधीगीताका याने नव अध्यायनका पाठ करै तो एक गोदानका पुण्य पावै; इसमें संशय नहीं ॥ ५४ ॥

षडंशं जपमानस्तु गंगास्नानफलं लभेत् ॥
त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥ ५५ ॥

छठे अंशको याने तीन अध्यायका नित्य पाठ करे तो गंगास्नानका फल पावै. तीसरे भागका याने छः अध्यायनका नित्य पाठ करनेसे सोमयागका फल पावै ॥ ५५ ॥

तथाऽध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरंतरम् ॥
इंद्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

दो अध्यायोंका नित्य पाठ करता रहै तो इंद्रलोकको प्राप्त होके, वहां एककल्प वास करै ॥ ५६ ॥

एकमध्यायकं नित्यं पठते भक्तिसंयुतः ॥
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम् ॥ ५७ ॥

जो एकही अध्यायका निरंतर नेमसे भक्तिपूर्वक पाठ करता रहै तो रुद्रलोकको प्राप्त होके वहां शंकरका गण होके, बहुत कालपर्यंत याने कल्पपर्यंत रहिके मुक्त होताहै ॥ ५७ ॥

अध्यायार्द्धं च पादं वा नित्यं यः पठते जनः ॥
सप्राप्नोति रवेर्लोकं मन्वंतरशतं समाः ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य गीताका आधा अथवा पाव अध्यायकाभी नित्यनेमसे पाठ करता रहै तो वह सूर्यलोकमें सौ मन्वंतरके वर्षोंपर्यंत वास करै ॥ ५८ ॥

गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पंच चतुष्टयम् ॥
त्रिकद्विकैकमर्द्धं वा श्लोकानां च पठेन्नरः ॥
चंद्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५९ ॥

जो गीताके दश श्लोक अथवा सात पांच चार तीन दो एक अथवा

आधे श्लोककाभी निरंतर पठन करै, तो अयुतायुतवर्ष याने दशकोटिवर्ष (१०,००,००,०००) चंद्रलोकमें वास करैगा ॥ ५९ ॥

गीतार्थमेककालेपि श्लोकमध्यायमेव च ॥
स्मरंस्त्यक्त्वा जनो देहं प्रयाति परमं पदम् ॥ ६० ॥

जो एककालभी गीताके एक श्लोकका अथवा अध्यायका अर्थ स्मरता भया देहको त्यागै तो मोक्षको पावै ॥ ६० ॥

गीतार्थं वापि पाठं वा शृणुयादंतकालतः ॥
महापातकयुक्तोपि मुक्तिभागी भवेज्जनः ॥ ६१ ॥

जो अंतकालके समयमें गीताका अर्थ अथवा पाठ सुनता देह त्यागै, तो महापातकीभी मुक्त होय ॥ ६१ ॥

गीतापुस्तकसंयुक्तः प्राणांस्त्यक्त्वा प्रयाति यः ॥
स वैकुंठमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ६२ ॥

जो गीताके पुस्तकयुक्त प्राणोंको त्यागे, सो विष्णुलोकको प्राप्त होके विष्णुसमीप आनंद करै ॥ ६२ ॥

गीताध्यायसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ॥
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ६३ ॥

जो मरणसमयमें गीतापुस्तकका एक अध्यायभी समीप होय, तो मनुष्यजन्म पायके फिर गीताभ्यास करके मुक्तहोय ॥ ६३ ॥

गीतोच्चारणसंयुक्तो म्रियमाणोगतिं लभेत् ॥
यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठं प्रकीर्त्तयेत् ॥
तत्तत्कर्म च निर्दोषं कृत्वा पूर्णमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

मरतेसमयभी जो गीता ऐसा उच्चारण करके मरे तोभी मुक्त होय जो जो कर्म करै उस उसमें गीतापाठ करे तो निर्दोष कर्मका संपूर्ण फल पावे ॥ ६४ ॥

पितॄनुद्दिश्य यःश्राद्धे गीतापाठं करोति वै ॥
संतुष्टाः पितरस्तस्य निरयाद्यांति सद्गतिम् ॥६५॥
जो श्राद्धमें पितृनके निमित्त गीताका पाठ करे तो वे पितर संतुष्ट भयेहुये नरकसे मुक्तिको जाँय ॥ ६५ ॥

गीतापाठेन संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥
पितृलोकं प्रयांत्येव पुत्राशीर्वादतत्पराः ॥ ६६ ॥
गीतापाठसे प्रसन्न पितर पुत्रको आशीर्वाद देतेभये पितृलोकको जातेहैं ६६

लिखित्वा धारयेत्कंठे बाहुदंडे च मस्तके ॥
नश्यंत्युपद्रवाः सर्वे विघ्नरूपाश्च दारुणाः ॥ ६७ ॥
गीताको लिखके गलेमें, भुजापर अथवा मस्तकमें धारण करे तो उसके विघ्नरूप दारुण उपद्रव नाश होय ॥ ६७ ॥

गीतापुस्तकदानं च धेनुपुच्छसमन्वितम् ॥
दत्वातत्साद्द्विजे सम्यक्कृतार्थोजायते जनः ॥ ६८ ॥
गोदान देनेपर गौकी पूँछसहित हाथमें गीताका पुतस्क लेके जिसने दान दिया वह सर्व करचुका ॥ ६८ ॥

पुस्तकं हेमसंयुक्तं गीतायाः शुद्धमानसः ॥
दत्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवे ॥ ६९ ॥
सुवर्णसंयुक्त गीतापुस्तकका दान जो शुद्धमनसे विद्वान् ब्राह्मणको देय, सो फिर जन्म न पावे ॥ ६९ ॥

शतपुस्तकदानं च गीतायाः प्रकरोति यः ॥
सयाति ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ७० ॥
जो गीताके सौ पुस्तकोंका दान करे, तो जिसलोकसे फिर इहां नहीं जन्मता है; उस वैकुंठको जाताहै ॥ ७० ॥

गीतादानप्रभावेण सप्तकल्पावधीः समाः ॥

विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ७१ ॥

गीतादानके प्रभावसे विष्णुलोकमें सात कल्पपर्यंत विष्णुसंयुत रहके आनंद करे ॥ ७१ ॥

सम्यक् श्रुत्वा च गीतार्थं पुस्तकं यः प्रदापयेत् ॥
तस्मै प्रीतोऽस्मि भगवान्ददामि मनसेप्सितम् ॥ ७२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जो गीताका अर्थ सुनिके, पुस्तकका दान करे; उसको मनवांछित फल देता हूं ॥ ७२ ॥

देहं मनुषमाश्रित्य चातुर्वर्ण्येषु भारत ॥
न शृणोति पठत्येव गीताममृतरूपिणीम् ॥ ७३ ॥
हस्तात्त्यक्त्वाऽमृतं प्राप्तं कष्टात्क्ष्वेडं समश्नुते ॥
पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा मोक्षं सुखी भवेत्॥७४॥

जो मनुष्य देह पाइके इस अमृतरूपिणी गीताको न पढताहै और न सुनता है सो हाथमें आयेभये अमृतको त्यागके विषको कष्टसे पीता है; इस गीतारूप अमृतका पान करके मोक्षको प्राप्त होके सुखी होताहै॥ ७३ ॥ ७४॥

जनैः संसारदुःखार्त्तैर्गीताज्ञानं च यैः श्रुतम् ॥
संप्राप्तममृतं तैश्च गतास्ते सदनं हरेः ॥ ७५ ॥

संसारदुःखकरके पीडित जिन मनुष्यों ने इस गीताके ज्ञानको सुना; वे अमृत होके विष्णुलोकको प्राप्त भये ॥ ७५ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो भुभुजो जनकादयः ॥
निर्धूतकल्मषा लोके गतास्ते परमं पदम् ॥ ७६ ॥

इस गीताका आश्रय करके, बहुतसे जनकादिकराजा पापरहित होके परमपदको गये हैं ॥ ७६ ॥

गीतासु न विशेषोस्ति जनेषूच्चावचेषु च ॥
ज्ञानेष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ७७ ॥

गीतामें नीच ऊंचका विशेष नहीं, आत्मा सबमें समान है; इससे यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ।। ७७ ।।

योऽभ्यसूयति गीतां च निंदां वा प्रकरोति च ॥
प्राप्नोति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७८ ॥

जो गीताकी ईर्षा और निंदा करता है सो प्रलयपर्यंत नरकमें रहता है७८

अहंकारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते ॥
कुंभीपाके स पच्येत यावत्कल्पलयो भवेत् ॥७९॥

जो अहंकारसे गीताके अर्थको नहीं मानता है, सो प्रलयकालपर्यंत कुंभीपाकनरकमें पचता है ।। ७९ ।।

गीतार्थं वाच्यमानं यो न शृणोति समीपतः ॥
श्वसूकरभवां योनिमनेकां सोऽधिगच्छति ॥ ८० ॥

जो गीता बँचतीभईको नजदीक जाके नहीं सुनता है सो कुत्ता और सूवरके अनेक जन्म पाता है ॥ ८० ॥

चौर्यं कृत्वा च गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत् ॥
नतस्य स्यात्फलं किंचित्पठनं च वृथा भवेत् ॥८१॥

जो गीताकी पुस्तक चोरीसे लाइके उसपर पाठ करे तो उसको पाठका फल तो नहीं मिले और वृथापरिश्रम होता है ।। ८१ ।।

यःश्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमादरात् ॥
नैवाप्नोति फलं लोके प्रमादाच्च वृथा श्रमम् ॥ ८२ ॥

जो गीताके अर्थको सुनके अतिआदरसे आनंद नहीं होता है उसको फल नहीं मिलता है वह प्रमादसे वृथा होता है ।। ८२ ।।

गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च पट्टांबरप्रवेष्टनम् ॥
निवेदयेच्च तद्द्रष्टच प्रीतये परमात्मनः ॥ ८३ ॥

गीताको सुनके सुवर्ण और रेशमी वस्त्र पुस्तक लपेटनेका उसपर लपेटिके परमात्माकी प्रीतिके वास्ते बाँचनेवालेको देना ।। ८३ ।।

वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्यवस्त्राद्युपस्करैः ॥
अन्नैर्बहुविधैः प्रीत्या तुष्यतां भगवानिति ॥ ८४ ॥

द्रव्य, वस्त्र, आभूषणादिकोंकरके वक्ताका पूजन करके नानाप्रकारके अन्न देना कि, भगवान् प्रसन्न होवे, इस बुद्धिसे देना ॥ ८४ ॥

माहात्म्यमेतद्गीतायाः कृष्णप्रोक्तं सनातनम् ॥
गीतांते पठते यस्तु यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

यह श्रीकृष्णका कहाभया सनातनगीताका माहात्म्य इसको गीतापाठके अंतमें पढे तो यथोक्त फल पावै ॥ ८५ ॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ॥
वृथा पाठफलं तस्य श्रम एवहि केवलम् ॥ ८६ ॥

गीतापाठ करके माहात्म्यको न बाँचै तो उसके पाठ करनेका श्रम वृथाही है. पाठका फल नहीं पाताहै ॥ ८६ ॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीतापाठं करोति यः ॥
श्रद्धया यः शृणोत्येव दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥८७॥

जो इस माहात्म्यके संयुक्त गीतापाठ करेगा अथवा सुनेगा सो दुर्लभ मोक्षपदको पावेगा ॥ ८७ ॥

श्रुत्वा पठित्वा गीतां च माहात्म्यं यः शृणोति वै ॥
तस्य पुण्यफलं लोके भवेद्धि मनसेप्सितम् ॥८८॥

जो गीताको सुनके और पढके माहात्म्यको पढते सुनते हैं वे मनइच्छित फलको पाते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमद्वाराहपुराणे सूतशौनकसंवादे श्रीकृष्णप्रोक्तं श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ।

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचिता श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यचंद्रिकाव्याख्या समाप्तिमगात् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

अन्वयाङ्क–दोहा–भाषाटीकासहिता–

श्रीभगवद्गीता प्रारभ्यते ।

श्रीर्जयति ॥ प्रणम्य परमात्मानं कृष्णं रामानुजं गुरुम् ॥
गीताव्याख्यामहं कुर्व गीतामृततरंगिणीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

दोहा–धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रमें, मिलेयुद्धकेसाज ॥
संजयमोसुतपांडवन, कीन्हेकैसेकाज ॥ १ ॥

जब श्रीकुरुक्षेत्रमें दुर्योधनादिक धृतराष्ट्रके पुत्र और युधिष्ठिरादिक पांडुके पुत्र आपआपकी सेनाओंको लेके युद्धके वास्ते तयार भये तब यहाँ हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्र संजयसे पूछने लगे कि, हेसंजय! धर्मस्थल कुरुक्षेत्रमें युद्धकीइच्छा कियेभये इकट्ठे भयेहुवे मेरेपुत्र और पांडुकेपुत्र ये निश्चयकरके क्या करनेको प्रारंभ करते भये सो कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच ॥ दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥ आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

दोहा–पांडवसेनाव्यूहलखि, दुर्योधनढिंगआय ॥
निजआचारजद्रोणसों, बोलेऐसेभाय ॥ २ ॥

ऐसे धृतराष्ट्रके वाक्य सुनिके संजय कहते भये कि, हे राजन्! राजा दुर्योधन व्यूहरचनायुक्त पांडवनकी सेनाको देखके तब द्रोणाचार्यके समीपजाके वचन बोलतेभये ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥

व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

दोहा–पांडवसेना अतिवड़ी, आचारजतूदेखि ॥
धृष्टद्युम्नतवशिष्यने, व्यूहरच्यौजुविशेखि ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! जो तुम्हारा शिष्य बुद्धिमान् ऐसा द्रुपदका पुत्रधृष्टद्युम्न तिसकरके यथायोग्यस्थानोंपरस्थापित पांडुपुत्रोंकी इस सर्वोत्तम सेनाको आप देखो ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

दोहा–शूरधनुषधारीवड़े, अर्जुनभीमसमान ॥
द्रुपदमहारथऔरहू, हैविराटयुयुधान ॥ ४ ॥

इससेनामें जोयुद्धकरनेमें भीमअर्जुनके समान बडेधनुषधारी शूरहैं वे ये कि, युयुधान और विराट और महारथ द्रुपद ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

दोहा–धृष्टकेतुअरुकाशिपति, चेकितान बलवंत ॥
कुन्तिभोजअरुसैन्यपति, पुरुजितशत्रुनिकंत ॥ ५ ॥

धृष्टकेतु चेकितान और बली काशीका राजा तथा पुरुजित् और कुंतिभोज और नरोंमेंश्रेष्ठ शैब्य ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

दोहा–युधामन्युअरुविक्रमी, उतमौजारणधीर ॥
द्रौपदिसुतअभिमन्युये, महारथोबलवीर ॥ ६ ॥

पराक्रमी और उत्तमशक्तिवाला और धीरजवान ऐसा युधामन्युसुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और सर्व द्रौपदीकेपुत्र याने पांच ये महारथ ही हैं॥ ६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

दोहा–मोसेनामेजेवड़े, तेसुनियेंद्विजराज ॥
नीकेजानौंतुमतिन्हैं, खरेयुद्धकेकाज ॥ ७ ॥

अब हे द्विजोत्तम! जो हमारेमें हमारी सेनाके श्रेष्ठ सेनापतिहैं उनको जाननेके वास्ते तुम्हारेसे कहताहौं तिन्होंको जानो ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

दोहा–तुम अरुभीषमकर्णकृप, जिनजीतेसंग्राम ॥
भूरिश्रवाविकर्णअरु, अश्वत्थामानाम ॥ ८ ॥

जोहमारी सेनामें मुख्य हैं उनमें एक आपहो और भीष्म और कर्ण और संग्रामके जीतनेवाले कृपाचार्य अश्वत्थामा और विकर्ण और तैसाही राजासोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

दोहा–औरौबहुतेशूरमा, मोलगितजैंजुप्रान ॥
भाँतिभाँतिआयुधलिये, सबैयुद्धबलवान ॥ ९ ॥

मेरेवास्तेत्यागाहैजीवनजिनने और नानाशस्त्रोंके प्रहारकरनेवाले औरभी बहुत शूर सर्व युद्ध चतुर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

दोहा–मोसेनाअसमर्थ है, भीषमराखतताहि ॥
परसेनासामर्थ्ययुत, शासतभीमजुवाहि ॥ १० ॥

हमारी सेना भीष्मकरकेरक्षितहै तिससे असमर्थ है और इनकी यह सेना

भीमकरके रक्षितहै इससे बलिष्ठहै तात्पर्य यह कि, भीष्म उभयपक्षपाती है १०

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्वएव हि ॥ ११ ॥

दोहा—आसपासमोव्यूहके, तुमसबठाढेहोहु ॥
भीषमकीरक्षाकरहु, करिकैमनमेंकोहु ॥ ११ ॥

इससे सर्व नाकेनपर यथायोग्य भागबनायेभये खड़े रहके तुम सबही निश्चयकरके भीष्महीका संरक्षणकरो ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

दोहा—दुर्योधनकेहर्षको, भीष्मजुचितमेंवाइ ॥
सिंहनादउच्चैकियो, दुःसहशंखबजाइ ॥ १२ ॥

ऐसेसुनकेबडेप्रतापवान् कौरवनमेंवृद्ध पितामहभीष्म उसदुर्योधनको हर्ष उत्पत्तिकरतेकरते ऊंचेस्वरसे सिंहनादसे गर्जकर शंखको बजातेभये॥ १२॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

दोहा—तबैशंखभेरीपणव, आनकगोमुखभूरि ॥
ताहीछिन बाजतभए, बडोशब्दभरिपूरि ॥ १३ ॥

तब शंख और भेरी और तासे नगारे रणसिंहे एकसंगही बजतेभये सो शब्द मिश्रितभारी होताभया ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

दोहा—श्वेतवरणघोडालगे, दीरघरथहिबनाय ॥

हरिअर्जुनतापरचढे, हरषेशंखवजाय ॥ १४ ॥

तवे जिसमेंश्वेतेघोड़ेजोड़ेहैं ऐसे श्रेष्ठरथपर बैठेभये कृष्णं और अर्जुनं दिव्यशंखोंको बजातेभये ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

दोहा–देवदत्तअर्जुनलियो, पांचजन्ययदुराय ॥
भीमभयानकभयदियो, पौंड्रशंखवजवाय ॥ १५ ॥

तहां श्रीकृष्णं पांचजन्यंको, अर्जुनं देवदत्तंको, भयंकरहै कर्मजिसंको ऐसा वृकोदरयानेतीक्ष्णाग्निउदरवाला भीम पौंड्रनाम महा शंखंको वजातेभये १५

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

दोहा–नृपतियुधिष्ठिरनेकियो, अमितविजयकोघोष ॥
लयेनकुलसहदेवजे, मणिपुष्पकसुरघोष ॥ १६ ॥

कुंतीकापुत्र राजा युधिष्ठिरं अनंतविजयशंखको, नकुलं और सहदेवं सुघोष और मणिपुष्पकशंखोंको, क्रमसे बजातेभये याने नकुल सुघोषको और सहदेवमणिपुष्पको बजातेभये ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

दोहा–तहांधनुर्द्धरकाशिपति, रथीशिखंडीजानि ॥
धृष्टद्युम्नवैराटअति, बलीसात्यकीमानि ॥ १७ ॥

श्रेष्ठधनुषवाला काशीकाराजा और महारथ शिखंडी धृष्टद्युम्न और विराट और शत्रुनकरिके अजित सात्यकि यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥

सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

दोहा—द्रुपदद्रौपदीसुतसबै, औरसुभद्रापूत ॥
इनसबअपनेशंखलै, धुनिकीनीतासूत ॥ १८ ॥

हे पृथ्वीनाथ राजाद्रुपद और सर्व द्रौपदीकेपुत्र और महाबाहु अभिमन्यु ये न्यारेन्यारे शंख बजातेभये ॥ १८ ॥

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

दोहा—फटोहृदयकौरवनको, शब्दसुन्योतावार ॥
पुहुमीअरुआकाशमें, पूरिरह्योगुंजार ॥ १९ ॥

सो मिश्रितबड़ा ऐसा शब्द आकाश और पृथिवीको शब्दायमानकरता करता धृतराष्ट्रकेपुत्रोंके हृदयोंको विदीर्णकरताभया ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

दोहा—देखेसुतधृतराष्ट्रके, अर्जुनधनुषसँभार ॥
कपिवरताकीध्वजलसै, शस्त्रनिधरतनिहार ॥ २० ॥
अर्जुनकहीजुकृष्णसों, मेरेचितजयजीत ॥
दुहुँसेनाकेमाँहिरथ, ठाढोकरियेमीत ॥ २१ ॥

हे महीपते ! तब शस्त्रपात प्रवृत्तसमयमें कपिध्वज पांडवअर्जुन तुम्हारेपुत्रोंको युद्धार्थ खड़े देखके तब धनुषको ऊंचाकरके श्रीकृष्णसे ये वाक्य बोलतेभये कि हे अच्युत ! दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरे रथको स्थापितकरो ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥

कर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

दोहा—जबलगिदेखोंहौंनहीं, बड़ेयुद्धकेदाय ॥
कौनकौनसोंहौंलरौं, यारणमेंसमपाय ॥ २२ ॥

मैं प्रथमें इनें युद्धइच्छावाले खड़ेभयेनको देखोंगा कि इस रणखेतमें मेरे साथ कौनकरके युद्धकरना योग्यहै ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

दोहा—युद्धकरणयोधाजिते, आयेहैंसजिसाज ॥
दुर्बुद्धीकौरवनको, भलेकरनकेकाज ॥ २३ ॥

जो ये जितने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्रके युद्धमें प्रियइच्छनेवाले यहां इकट्ठेभ-येहैं इन युद्धकरनेवालोंको मैं देखोंगा ॥ २३ ॥

संजय उवाच—एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेनभारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥२५॥

दोहा—ऐसेहैं श्रीकृष्णजू, सुनिअर्जुनकीवात ॥
दोऊसेनामांझरथ, लैराख्योतावात ॥ २४ ॥
भीषमद्रोणहिआदिदै, नृपजुहुतेताठौर ॥
अर्जुनसोंबोलतभये, देखिकौरवनओर ॥ २५ ॥

संजयधृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि, हेभारत! अर्जुनकरेके ऐसे कहेभये श्रीकृष्ण दोनों सेनाओंके बीचमें श्रेष्ठरथको स्थापितकरके भीष्म और द्रोणाचार्य केसामने और सर्व राजाओंकेसामने बोलतेभये कि, हे पार्थ! ये इक-ट्ठेभये जोकुरुवंशी तिनकोदेखो ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ॥

आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ २६ ॥
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

दोहा—अर्जुनतेदेखेसबै, पितापितामहभाइ ॥
गुरुमामाभैयासखा, सुतनातीकेदाइ ॥ २६ ॥
श्वशुरसुहृदबांधवसकल, दोऊसेनामाँह ॥
तिन्हैदेखिकरुणाभई, तवबोलेनरनाँह ॥ २७ ॥

श्रीकृष्णजीके कहनेपर अर्जुने उसरणमें खड़ेहुए पितृ (पितासदृशभूरिश्रवादिककाका) पितामह (भीष्म सोमदत्तादिक) आचार्य (द्रोणाचार्यादिक) मामा (शकुनिशल्यादिक) भ्राता (दुर्योधनादिक) पुत्र (द्रौपदीमें पांचोंसेभये जो पांच) पौत्र (लक्ष्मणादिकोंके पुत्र) तथा सखा (अश्वत्थामा जयद्रथादिक) ससुर (द्रुपदादिक) और सुहृद (कृतवर्मादिक) इनको देखतेभये ऐसे दोनों सेनाओंमेंभी उन सब बंधुनको खड़े देखि के सो कुंतीपुत्र अर्जुन अति कृपाकरके व्याप्त खेदित होतेहोते यह बोलतेभये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं
समुपस्थितम्॥सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशु
ष्यति॥वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते२८॥२९॥

दोहा—देखेमैंसबबंधुये, कृष्णयुद्धकेदाय ॥
मोमुखसूखतजातहै, अंगअंगशिथिलाय ॥ २८ ॥
रोमहर्षहैदेहमें, औरकंपबहुभाय ॥
धनुषगिरतमोहाथते, त्वचातपनिअधिकाइ ॥ २९ ॥

अर्जुन कहते हैं कि, हे कृष्ण ! युद्धइच्छावाले खडेभये इन स्वजनोंको देखिके मेरे गात्र शिथिलहोतेहैं और मुख सूखता है और मेरे शरीरमें कंप और रोमांच होते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

दोहा–ठाढोहूहौंनहि सकत, भ्रमतजुमोमनमीत ॥
केशवअशकुनदेखियत, कैसींहैयहरीत ॥ ३० ॥

हाथसे गांडीवधनुष गिरापरता है और त्वचाभी जरीजातीहै और खडे-होनेकोभी नहीं सकताहौं और मेरा मन भ्रमतासरीखाहै ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

दोहा–स्वजनहनत संग्राममें, देखौं नहिं कल्यान ॥
विजय न चाहौं कृष्णजू, नहिंचाहौं सुखमान ॥ ३१ ॥

और हे केशव! निमित्तभी विपरीत देखताहौं और संग्राममें स्वजनोंको मारके फिर कल्याणभी नहीं देखताहौं ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किन्नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ३२

दोहा–वृथा भोग गोविन्दजू, जीवन अरु सुखराज ॥
राज्यभोग आनंदपुनि, करियत जिनके काज ॥ ३२ ॥

हे कृष्ण! विजय और राज्य और सुख नहीं चाहताहौं.हे गोविंद! हमारेको राज्यकरके भोगकरके अथवा जीवनेकरकेभी क्या प्रयोजन है३२

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।३३।

दोहा—ते असुधन को त्यागिकै, आये सब संग्राम ॥
तात अचारज पुत्र अरु, पितामहा सुखधाम ॥ ३३ ॥

हमने जिनकेवास्ते भोग सुख और राज्य चाहाथा वे ये प्राण और धनोंको त्यागके युद्धमें खडे हैं ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ३४

दोहा—संबन्धी मातुल श्वशुर, सारनातिअवरेषि ॥
येमारैंमोकोयदपि, हौंनहिंहनौंविशेषि ॥ ३४ ॥

ये सर्व मेरे आचार्य पितातुल्यकाका पुत्र और तैसेंही पितामह मामा ससुर नातीपोता साले तथा और संबंधी हैं ॥ ३४ ॥

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ३५

दोहा—राज्यतजौंतिहुँलोकको, हैकितेकयहभूमि ॥
सुतनहनौंधृतराष्ट्रके, कतसुखरहिहौंझूमि ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! तीनोंलोकोंके राज्यके वास्ते भी मेरेको ये मारते होयँ तौभी इनको मारनेकी नहीं इच्छाकरताहौं तो पृथिवीके वास्ते क्यों मारौंगा ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

दोहा—पापहोइइनकेहने, यद्यपिलियेहथ्यार ॥
तातेयेहनियेनहीं, बंधुसहितनिधार ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रकेपुत्रोंको मारके हमको क्या प्रसन्नता होयँगी इन आततायिनको मारके हमको पापही लगेगा ॥ आततायीलक्षण ॥ " दोहा—अग्निदेइविषदेइजो, क्षेत्रदारहरजोइ ॥ धनहरसन्मुखशस्त्रकर, आततायिषट् होइ " ॥ १ ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

दोहा—कृष्णसुजनकोमारिके, सुखलहियेकिहिंनाइ ॥
एजुलुभायेलोभसों, तेदेखैयहचाइ ॥ ३७ ॥

जिससे कि, इनके मारनेका पापही होयगा तिससे हमारे बंधुधृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके वास्ते हम नहीं योग्य हैं. हे माधव ! निश्चयपूर्वक स्वजनोंको मारके कैसे सुखी होयँगे ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ॥
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

दोहा—कुलक्षयकीन्हेंदोषजे, औरमित्रकोद्रोह ॥
जानिबूझियापापको, किहिविधिकीजेकोह ॥ ३८ ॥
कुलक्षयकीन्हेंकुलधरम, जातजुसवैनशाय ॥
धर्मनशेसबकुलनशै, होहिअधर्मसुभाय ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन ! लोभकरके जिनके चित्त भ्रष्ट भयेहैं ऐसे ये दुर्योधनादिक कुलक्षय करनेके दोषको और मित्रद्रोहमें पापको यद्यपि नहीं देखते हैं (नहीं जानतेहैं) तौभी कुलक्षयकृत दोषको देखते भये हमकरके इस पापसे निवर्त्तहोनेकेवास्ते कैसे न जाननाचाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

दोहा—कृष्णअधर्महिकेबढे, दुखितहोहिंकुलनारि ॥
होहिंवर्णसंकरतबहि, त्रियादोषनिरधारि ॥ ४० ॥

कुलके क्षय होनेसे सनातन कुलके धर्म नाशहोते हैं फिर धर्म नष्टहोनेसे

सर्व कुलको अधर्म जीतलेती है याने कुलको अप्रतिष्ठित करदेताहै॥ ४० ॥

अधर्माऽभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

दोहा—नरकपरेसंकरभये, कुलघातीजेलोय ॥
पतितहोहिंतिनकेपितर, पिंडदेइनाहिंकोय ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ! अधर्मकरके कुलको अप्रतिष्ठित होनेसे कुलकीस्त्रीजन दुष्टहो-यँगी हे वृष्णिवंशोद्भव ! उन दुष्ट स्त्रीनमें वर्णसंकर उत्पन्न होयगा ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

दोहा—कुलहिवर्णसंकरभए, डारतदोषवढ़ाय ॥
जातिधर्मकुलधर्मते, तेईदेतनशाय ॥ ४२ ॥

जिससे कि, जिनके पितृपिंडोदकक्रियाप्राप्तभयेविना संसारमेंपड़तेहैं इसीसे कुलघातिनके कुलको वह वर्णसंकर नरकही प्राप्तिके हेतु उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

दोहा—कुलधर्मनकेनाशते, निःसंशययहहोइ ॥
सदानरकमेंतेरहैं, कहतजुयोंसबकोइ ॥ ४३ ॥

जो कुलघातीहैं उनके जो ये वर्णसंकरकारक दोष तिनकरके जाति-धर्म और सनातन कुलधर्म नष्ट होतेहैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

दोहा—बड़ेपापकेकरनको, निश्चयकियोविचार ॥
चितमेंआनोराजसुख, हनकुटुम्बनिरधार ॥ ४४ ॥

हे जनार्दन ! जिनके कुलधर्मनष्टभये उन मनुष्योंका नरकमें अवश्य वास होताहै ऐसा सुनते हैं ॥ ४४ ॥

अहोबतमहत्पापं कर्त्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

दोहा—करमेंलैहथियारये, आवेंमोसमुहाइ ॥
मोहिंहनैंजोसहजहीं, मानिलेहुँसुखभाइ ॥ ४५ ॥

अहोकष्ट हमें बडेपापको करनेको निश्चयकिये हैं जो राज्यसुखलोभकरके स्वजनोंको मारनेका उद्योगकिये हैं ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६॥

दोहा—ऐसेकहिअर्जुनतवै, वैठिगयेरथमाहिं ॥
करतेडारतशरधनुष, शोकवढतमनमाहिं ॥ ४६ ॥

जो हाथमेंशस्त्रलियेहुये धृतराष्ट्रके पुत्र अशस्त्रको और अप्रतीकारको याने जो मैंवदला नहीं लेताहौं ऐसे मेरेको रणमें मारेंगे सो मारना भी मेरा अतिकल्याणरूप होयगा ॥ ४६ ॥

संजय उवाच॥एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थउपाविशत्॥विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-गीताहरिवल्लभकियो, भाषाकृष्णप्रसाद ॥
वीत्योपहलोध्याययह, अर्जुनकियोविषाद ॥ ४७ ॥

राजाधृतराष्ट्रसे संजयकहते हैं कि, संग्राममें अर्जुन ऐसे कहके बाणसंयुक्तधनुष डारिके शोकव्याकुलमनहुआ भया रथके पिछाड़ी जायके रथमें बैठरहताभया ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
गीतामृततरंगिण्यां प्रथमाध्यायप्रवाहः ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

तं तथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

दोहा-लेउसासअँसुवाभरे, अर्जुनकरुणाभाय ॥
वहुविषादसंयुक्तलखि, वोलेश्रीयदुराय ॥ १ ॥

राजाधृतराष्ट्रसे संजयकहते हैं कि, जो प्रथमअध्यायमें करुणावाक्यकहे वैसीही कृपाकरके व्याप्त आंसुनके भरनेसे नेत्रव्याकुल विषादयुक्त उस अर्जुनसे मधुसूदन भववान् ये वाक्य बोलते भये ॥ १ ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

दोहा-अर्जुनयासंग्राममें, क्योंदुखपायोमीत ॥
कीरतिअरुस्वर्गहिहरैं, कायरज्योंभयभीत ॥ २ ॥

जो बोले सो कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो अनारिनके सेवनेयोग्य नरकको लेजानेवाला और अपकीर्त्तिका करनेवाला ऐसा यह मोह तुमको ऐसे विषमस्थलमें कैसे प्राप्तभया ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

दोहा—कायरतातूजनिकरे, यहतोकोंनहिंयोग ॥
छांडिकचाईहीयकी, देशत्रुनकोरोग ॥ ३ ॥

हे पृथाकेपुत्र! तुम कायरताको न ग्रहणकरो तुम्हारेमें यह नहीं योग्य है हे परंतप! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताकारक कायरताको छोडिके खडेहोजावो ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

दोहा—हरिजूयासंग्राममें, हैंभीषमअरुद्रोन ॥
पूजौंकैशरसोंहनौं, मोसोंकहियेसोन ॥ ४ ॥

ऐसेंकृष्णके वाक्यसुन अर्जुनबोलेकि, हे मधुसूदन! मैं संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्यसे बाणोंकरके कैसें युद्धकरोंगा हे अरिसूदन! येदोनोंपूजन-योग्यहैं यहां मधुसूदनकहनेकातात्पर्ययहकि, आप दैत्यहंता हो तो सज्जनों-से क्योंयुद्धकरातेहो अरिसूदनकहनेका तात्पर्य कि, जो शत्रुनाशकहो तो भीष्मादिकपूज्यनपर बाणप्रहारक्योंकरातेहो ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

दोहा—भीखमांगिवरुखाइये, गुरुहनिवोजुअनीति ॥
गुरुहिमारिभोगीकरैं, भषजिजुलोहूरीति ॥ ५ ॥

इसलोकमें अतिउत्तमप्रभाववाले गुरुनको मारेविना भिक्षाकाअन्न भी खानेको कल्याणहीजानना और अर्थ थानेद्रव्यकीहै कामना जिनके ऐसे गुरुनको मारके रक्तसेभरेभये भोगोंको भोगोंगा ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

दोहा-अहौजुहमनहिंजानहीं, हारिभलींकैजीत ॥
जिनहिंमारिहमनाजियें, तेएठाढेमीत ॥ ६ ॥

यहभी नहीं जानतेहैंकि, हमारेमें कौन बलीहै नजाने हम जीतेंगे किंवा ये हमको जीतैं जिनको मारके हमजीनानहीं चाहतेहैं वे धृतराष्ट्रकेपुत्र सन्मुखही खड़ेहैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

दोहा--धर्ममांझहौं मूढहौं; पूछतकृष्णस्वभाइ ॥
शिष्यतुम्हारीशरणहै, दीजैयुक्तिबताइ ॥ ७ ॥

कार्पण्ययहकि,हमइनकोमारके कैसेजियेंगे तथादोष जोकुलक्षयका दोषइनकार्पण्य और कुलक्षयदोषोंकरके मेराक्षत्रियस्वभाव विध्वंसित भयाहै इसीसे धर्ममें भी मेराचित्तचकितभया है जैसे कि, क्षत्रियधर्मयुद्ध अथवा भिक्षान्नभोजन इनमें कौन कल्याणकारक हैं ऐसे चित्त चकितहै ऐसामैं तुम्हाराशिष्य तुमको पूंछताहौं जो मेरेवास्ते निश्चय कल्याणदायक होय वही कहो तुह्मारे शरणागत मेरेको सिखावो ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

दोहा-भूमिलोकसुरलोकको, लहौंअकंटकराज ॥
इंद्रियशोखैहीयको, जाइनशोकसमाज ॥ ८ ॥

अरेरेरेरे ! बडाअनर्थ है कि, जो पृथिवीमें शत्रुरहित संपदायुक्त राज्यको और देवताओंके भी अधिपतित्वको पायके मेरी इंद्रियनके सुखानेवाले शोकको दूरकरे उसको मैं नहीं देखताहौं ॥ ८ ॥

संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

दोहा—ऐसेकहिश्रीकृष्णसों, अर्जुनताहीवार ॥
युद्धनहींहरिजूकरौं, कीजौयहनिर्धार ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहनेलगे कि, शत्रुनको संतापितकरनेवाला तथा गुडाका जो निद्रा तिसके जीतनेमें समर्थ ऐसाजो अर्जुन हृषीकेश याने इंद्रियोंके मालिकश्रीकृष्णको ऐसें कहके फिर नहीं युद्धकरौंगा ऐसें गोविंदसे कहके मौन होतेभये ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

दोहा—दोऊसेनामध्यजो, अर्जुनकियोविषाद ॥
क्रियावंतह्वैकृष्णजू, कीन्होंवचनप्रसाद ॥ १० ॥

हे भरतवंशउत्पन्नधृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंके मध्यमें युद्धकेउत्साहको त्यागिके शोककररहा जो अर्जुन तिससे हँसतेसरीखे श्रीकृष्णजी यह याने-जोआगेकहैंगे सो वचन बोलते भये ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥ गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

दोहा—शोचअशोचीक्योंकरत, कहतज्ञानकीबात ॥
शोचनपंडितकरतहैं, जीवनउपजतजात ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णभगवानने निश्चय किया कि, इसको धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है,

इससे यह धर्मको तो अधर्म और अधर्मको धर्म मान रहा है, परंतु धर्मको जानना चाहता है सो मोह गयेविन यह कैसे जानेगा? सो मोह आत्मदर्शनविना नष्ट होनेका नहीं ज्ञानविना आत्मदर्शन होनेका नहीं; सो ज्ञान निष्कामकर्मविन होनेका नहीं और अध्यात्मशास्त्र जो आत्म—अनात्म—विवेकउपदेश याने जीव और शरीरका विवेक उसका उपदेश इसविना निष्कामकर्म होने सकतानहीं इससे अध्यात्मशास्त्रही उपदेश करो, ऐसा विचारके उपदेश करनेलगे. अब इस श्लोकसे लेके अठारहें अध्यायके छासठके श्लोकमें जो " मा शुचः " ऐसा वाक्य है वहां पर्यंत गीताउपदेश है. तहां प्रथम भगवान् कहते हैं कि, हेअर्जुन! " त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः " याने जो शोचनेयोग्य नहीं तिनको शोचते हो और प्रज्ञावाद याने पंडितों सरीखी बातें तिनको भाषते याने कहते हो वे ऐसेकि, हमारे पितरोंके श्राद्ध और तर्पण नहोनेसे वे स्वर्गसे नरकमें पडेंगे सो स्वर्गप्राप्ति और पड़ना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन नहीं हैं; वे तो आपके करे पुण्यपापके स्वाधीन हैं " क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशंति " इस प्रमाणसे वे पुण्यपापसदेह आत्माके स्वाधीन हैं. केवलदेहके स्वाधीन नहीं हैं यद्यपि पुत्रादिकोंके करेभये श्राद्धादिकोंका पुण्य प्राप्त होताहै; कारण कि, पुत्रादिक सदेह आत्मसंबंधी हैं; तथापि श्राद्ध नहोनेसे स्वर्गसे पड़ना यह कोईकालमेंभी होनेका नहीं; इसवास्ते गतासु जो ये शरीर नित्य नाशधर्मी और अगतासु जो जीव नित्य अमर एकरस हैं इससे " नासतोविद्यते भावो नाऽभावो विद्यतेसतः " इसप्रमाणसे पंडितजन इनका शोच नहीं करते हैं; इससे तुमकोभी शोचना अयोग्य है. " स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः सिद्धिंविंदतिमानवः " इस प्रमाणसे स्वधर्मयुद्धही कल्याणकारक है. ॥ ११ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

दोहा–हमतुमअरुनरराजयह, इनकोनाशनहोय ॥
तिहूंकालमेंथिररहैं, ऐसेसबकोजोय ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो आत्मा यानि जीवात्मा परमात्मा हैं उनके स्वभाव सुनो. सो ऐसे कि, " अहं सर्वेश्वर इतः पूर्वमनादौ काले-जातुनासमपित्वासमेव " मैं सर्वेश्वर इस समयसे प्रथम अनादिकालमें क्या न था ? क्योंकि, निश्चयकरके था " त्वंनासीः अपितु आसीः एव " जैसा मैं था ऐसा क्या तू न था? तू भी था. "इमे जनाधिपाः किं न आसन् अपि-त्वासन् एव" ये सब राजा क्या न थे ? अर्थात् ये भी थे. "अतःपरं सर्वे-वयं किं न भविष्यामः अपितु भविष्याम एव" इस कालसे अगाड़ी क्या हम, तुम ये सर्व न होयंगे ? अर्थात् होयहींगे. इससे आत्मानित्य है. शोच करना वृथा है. तथा जो यहां हम, तुम और ये ऐसा कहा इससे यह सि-द्धांत भया कि, जीवात्मा और परमात्मा न्यारे न्यारे हैं यह न्यारापनाही सत्यहै. इसीसे श्रीकृष्णजीने भी उपदेश किया क्योंकि अज्ञानमोहितअर्जु-नको मिथ्याउपदेश करनेहीके नहीं. इस न्यारेपनेमें श्रुतिभी प्रमाण है सो यह–" नित्योनित्यानांचेतनश्चेतनानामेकोबहूनांयोविदधातिकामानिति " अर्थ–जो एक नित्यचेतन परमात्मा है सो बहुत नित्यचेतन जीवोंकी काम-नाको परिपूर्ण करताहै; जो कोई कहै कि, यह भेद अज्ञानकृत है तो उनसे कहना कि, यह परमार्थदृष्टिके अधिष्ठाता और आत्मयाथात्म्यसे सदा अज्ञानरहित नित्यस्वरूप परमपुरुष श्रीकृष्णमें अज्ञानकृतभेददर्शनकार्य होनेका नहीं. तोभी कोई कृष्णको अज्ञ कहै तो उनकरके उपदिष्ट गीता अप्रमाण होता है. जो कोई कहै कि, श्रीकृष्णने अभेदनिश्चय कियाहै इससे वह भेद निराकृत है; सो जले वस्त्रतुल्यबंधनकारक नहीं है. तब कहना कि, मृगतृष्णानिराकृत जानिके; फिर उसमें जल लेने न जायगा जो गया तो वह अज्ञहै. इसीतरह जो मिथ्या भेदका इसमें उपदेश दिया तो इस गीता-काभी प्रमाण न मानना चाहिये. दूसरा यह कि, भेदविना उपदेशभी नहीं

बनेगा. तथा परमात्मामें ऐसाभी होनेका नहीं कि, प्रथम अज्ञ थे शास्त्राध्ययनसे ज्ञानी भये. जिसको शास्त्राभ्याससे ज्ञान होताहै उसको कोई समयमें अज्ञानभी होता है. सो नित्यज्ञानस्वरूप श्रीकृष्णमें यहभी नहीं होसकताहै. यहां श्रुति प्रमाण है सो ऐसे कि, 'यःसर्वज्ञः सर्ववित् ॥ पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच ' तथा यहांभी कहेंगे ' वेदाहंसमतीतानिवर्तमानानिचार्जुन । भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन ' इत्यादि प्रमाणोंसे भेदही सिद्ध होता है. भेदविना उपदेश किसको करे ? तहां कोई कहते हैं कि, अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है, आपको आपही उपदेश करतेहैं. तहां कहना कि, दरपन जल इत्यादिमें आपके प्रतिबिंबको देखके जो बातें करे सो उन्मत्त याने चित्तभ्रष्टसिर्री होताहै, उसके वाक्यभी अप्रमाण हैं, जिसको अभेदज्ञान है उसको उपदेश बननेहीका नहीं न उसके गुरुहैं. न शिष्य है इससे यही सिद्ध भया कि, परमात्मासे जीव न्यारे हैं ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

दोहा–बालयुवाअरुवृद्धता, यादेहीमेंहोत ॥
तैसेदेहांतरलहै, धारनमोहनहोत ॥ १३ ॥

जैसे इस देहमें जीवकी कुमारअवस्था यौवन और जराअवस्था होतेहैं, तैसे देहांतरकी प्राप्तिभी होतीहै तहां धीर याने ज्ञानीपुरुष नहीं मोहतेहै १३

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ॥ १४ ॥

दोहा–अर्जुनइंद्रियवृत्तिमिलि, विषयजुसुखदुखदेत ॥
सबैजानिनहिंथिररहै, महितिनकोयाहेत ॥ १४ ॥

हे कुंतीपुत्र ! मात्राजोइंद्रियां तिनकेस्पर्श जो शब्द स्पर्श रूप रस और गंध ये शीत उष्ण याने मृदु कठोर शब्द शीतोष्ण शस्त्रप्रहारादिक और

संयोगवियोगादिक दुःखके देनेवाले अनित्य और आगमापायी याने होते जाते रहते हैं हे भारत ! तुमभरतवंशीहो उनको सहनकरो ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

दोहा–जाकेविधानहोयकछु, सुखदुखगनैसमान ॥
यहैधीरमुक्तिहिलहै, बातयहैपरमान ॥ १५ ॥

हे पुरुषर्षभ ! सुख और दुःख है सम जिसके ऐसे जिस ज्ञानीपुरुषको ये निश्चयकरके नहीं पीड़ा करतेहैं सो मोक्षजानेको समर्थ होताहै ॥ १५ ॥

नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

दोहा–जोहैसोविनशैनहीं, जोविनशैसोनाहिं ॥
जोइनतत्त्वनकोलखै, गनियेज्ञानीमाहिं ॥ १६ ॥

जो "गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः" इस वाक्यकरके आत्माका स्वाभाविक नित्यत्व और देहका नाशित्व समझके शोक न करना कहा उसीको अब 'नासतः' इत्यादिकरके खुलासा दृढता करते कहते हैं सो ऐसे कि; असत् जो नाशवान्है उसकी स्थिरता नहीं होतीहै और सत् जो अविनाशीहै उसका नाश नहीं होता तत्वदर्शीपुरुषोंने इन दोनोंकीभी सिद्धांत देखाहै सोई आगे दो श्लोकोंमें खुलासा कहेंगे ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्याऽस्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

दोहा–जासोंजगयहहैभरचो, सोअविनाशीजानि ॥
जाहिविनाशिनकोसकै, ताहिआतमामानि ॥ १७ ॥

जिस आत्मतत्वकरके यह सर्व अचेतन तत्व व्याप्तहै उसको तो अविनाशी जानो ॥ इस अविनाशीको विनाश करनेको कोई नहीं समर्थहै १७

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

दोहा--अंतवंतसबदेहहैं, जीवरहतहैनित्त ॥
अविनाशीवहकहतहै, युद्धकरोंकिनिमित्त ॥ १८ ॥

जो यह जीव अविनाशी है तथा अप्रमेयहै याने यह इतनाही है, ऐसा कहनेमें नहीं आताहै तथा नित्यहै याने सर्वदा एकसाहै ऐसे जीवके ये देहैं नाशवंत कहेहैं हे अर्जुन ! तिससे युद्धकरो ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

दोहा—जोयाकोहंतागिनै, हन्योकहतहैकोइ ॥
यहनमरैमारैनहीं, अज्ञानीवहदोइ ॥ १९ ॥

जो इस आत्माको मारनेवाला जानताहै और जो इसको अन्यकरके मरा मानताहै । वे दोनों नहीं जानतेहैं यह न किसीको मारताहै न किसी करके मरताहै ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

दोहा—यउनमरैउपजेनहीं, भयोनआगेहोइ ॥
अजरपुरातननित्यहै, मारेमरैनसोइ ॥ २० ॥

यहआत्मा कोईकालमेंभी जन्मता और मरता नहीं यह अजन्माहै नित्य सर्वकालमेंहै पुराण याने पहिलेथा सोभी है नवा न भया है और फिर होने वालाभी नहीं है शरीरके मारनेपरभी नहीं मरता है ॥ २० ॥

वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

दोहा—जोजानतहैआतमा, अजअविनाशीनित्त ॥
सोनरमारैकौनको, ताहिहतैकोमित्त ॥ २१ ॥

जो इस आत्माको अजन्मा अक्षर्य नित्य अविनाशी जानताहै तो हे अर्जुन ! सो वह पुरुष कैसे किस को मरवावताहे और कैसे किसैको मारताहै ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो-ऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

दोहा—जैसेपटजीरणतजै, पहिरतनरजुनवीन ॥
देहपुरातनजीवतजि, नयोगहैपरवीन ॥ २२ ॥

यद्यपि शरीर नष्टहोनेसे आत्माका नाशनहीं तौभी शरीर वियोगका जो दुःख होताहै ऐसा अर्जुनका आशय जानिके भगवान्कहने लगे कि, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागिके और नवीनोंको ग्रहणकरताहै ॥ तैसे जीवै पुराने शरीरोंको प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

दोहा—यह नकटैहथियारसों, पावक सकैनजारि ॥
भिजौसकैजलनाहिंनै, सोखिसकैनबयारि ॥ २३ ॥

सर्वशस्त्रभी इसआत्माको नहीं छेदि (काटि) सकतेहैं अग्नि इसको नहीं जलाताहै ॥ जल इसको नहीं भिजोयसकताहै और पवनभी नहीं सुखाय सकताहै ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

दोहा–कटैजरैसूखैनहीं, औरनभिजवनयोग ॥
निरजनहैसबठौरथिर, अविनाशीविनरोग ॥ २४ ॥

यह आत्मा छेदनेयोग्यनहीं यह जलाने योग्य नहीं और निश्चित भिजाने सुखाने योग्यभी नहीं है ॥ यह नित्य सर्व प्रकारके शरीरोंमें जानेवाला स्थिरस्वभाव अचल और सनातनहै ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

दोहा–प्रगटनहींजुअचिंतहै, अविनाशीतूजानि ॥
ऐसोयाकोजानिकै, शोकलेशजनिमानि ॥ २५ ॥
जोतुमजानेजीवको, जन्ममरणपुनिहोइ ॥
तऊशोकतूजनिकरै, मनदृढतामेंगोइ ॥ २६ ॥

यह अतिसूक्ष्मतासे अप्रगटहै यह विचारमें नहीं आताहै यह विकाररहित कहाहै ॥ तिससे इसको ऐसा जानिके शोचकरनेको नहीं योग्यहै ॥ जोकि इसको नित्यजन्मा अथवा नित्य मरा जानोगे ॥ तोभी हे महाभुजे अर्जुन ! तुम इस आत्माको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २५ ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

दोहा–जोउपजैविनशैस्वई, मरैसुउपजैआइ ॥
होनहारसोहोतहै, तहाँनशोचबढाइ ॥ २७ ॥

जिससेकि, जन्मेका मृत्यु निश्चयहै और मरेका जन्म निश्चयहै ॥ तिससे इस निरुपाय परिणाममें तुम शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

दोहा–पाछेजाहिनजानिये, आगेपरैनजानि ॥
माँझहियहकछुदेखिये, ताकोशोचनमानि ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! मनुष्यादिकै भूतप्राणी जन्मके आदिमें प्रगट न थे जन्मके पीछे मरणके आदि मध्य अवस्थामें प्रगटदीखताहै मरे पीछेभी न दीखेंगे ऐसे निश्चयसे तहां शोक कौनहै ॥ २८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

दोहा–जोयाकोदेखेकहैं, सोऊअचरजभाइ ॥
सुनैअचंभवसोलगै, यहजान्योनहिजाइ ॥ २९ ॥

ऐसे देहात्मवादमें शोकका परिहारकिया अब कहतेहैं कि, देहसेन्यारे आत्मामें द्रष्टा श्रोता वक्ता और ज्ञाताभी दुर्लभहैं ॥ प्रथम कहेभये लक्षणों-करके युक्त आत्मा सर्वसेविलक्षणहै तहां कोईतपस्वीपुण्यवान् इसआत्माको आश्चर्यवत् देखताहै और तैसाही कोईआश्चर्यवत् कहता है ॥ और तैसाही और पुरुष इसको आश्चर्यतुल्य सुनताहै और कोई पुरुष इस आत्माहीको सुनिकेभी नहीं जानताहै ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

दोहा–जीवनमारचोजातहै, वसतसवनकीदेह ॥
तातेशोचनकीजिये, करिकाहूसोंनेह ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! सर्वकी देहमें यह जीव नित्यही अवध्यहै ॥ तिससे तुम सर्व भूतोंको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

दोहा--अपनोधर्मविचारितू, जनिछाँड़ैसंग्राम ॥
धर्मयुद्धतेक्षत्रियहि, औरनकछुअभिराम ॥ ३१ ॥

स्वधर्मको भी देखके दयाकरनेको नहीं योग्यहो ॥ क्योंकि क्षत्रियको धर्मसंबंधी युद्धसे और कल्याण नहींहे ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

दोहा--अपनीइच्छातेलह्यो, खुल्योस्वर्गकोद्वार ॥
भाग्यवंतक्षत्रियलहैं, ऐसोरणयावार ॥ ३२ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो आपसे प्राप्तभया और खुलाभया स्वर्गका द्वार ऐसे युद्धको पुण्यवान् क्षत्रियलोग पावंत हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥
अकीर्त्तिंचापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

दोहा-और धर्मसंग्रामको, जोतूकरिहैनाहिं ॥
तजिकीरतिअरुधर्मको, परिहैपापनिमाहिं ॥ ३३ ॥
सबलोककहिहैअबै, तेरोअयशबढाइ ॥
अयशप्रतिष्ठावंतको, मरनहुँतेअधिकाइ ॥ ३४ ॥

जो कदाचित् तुम इस धर्मरूप संग्रामको न करोगे ॥ तो उससे स्वधर्म और कीर्तिकोभी छोड़के पापको प्राप्त होवोगे ॥ और लोग तुम्हारी अखंड अकीर्त्तिको भी कहेंगे ॥ सो अकीर्ति संभावितपुरुषके मरणसे अधिक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ॥
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

दोहा–भयतेअर्जुनरणतज्यो, योंकहिहैंयेवीर ॥
तोहिंवहुतकरिमानते; अवलघुह्वैहौधीर ॥ ३५ ॥
तेरेअरिसवकहहिंगे, जेअनिकहिनीवात ॥
निजघटिआईकेसुने: वहुदुखलागततात ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णजीनेअर्जुनकाअभिप्रायजाना किजोमैंवंधुनके स्नेहऔर दयालुतासे युद्धनकरूंगा तोमेरीअकीर्तिकैसेहोयगी याने होनेकीनहीं ऐसा जानिकेवोले कि, हे अर्जुन ! जिनकर्णदुर्योधनादिकमहारथोंके तुमं शूर शत्रु ऐसेमान्य थे उनहींकेअवयुद्धनकरनेसे निंदनयोग्यलघुताकोप्राप्त होवोगे वेहीमहारथशत्रु तुमको भयसे संग्राममें नकिया ऐसा मानेंगे वेही तुम्हारे शत्रु तुम्हारी सामर्थ्यको निंदतेभये वहुतसे दुर्वाक्य वोलेंगे यांनेअर्जुनकायरहै शोभाकेवास्तेशस्त्रवांधताहै जैसस्त्रीआभूषणमेंसर्पसिंहादिकदेखिकेप्यारसेधारनकरै और साक्षात्- देखिकेप्राणलेकेभागे तैसे जवऐसीनिंदाकरेंगे तव उससे वडादुःख कौन है सो कहो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

दोहा–लरतमरतलहिहैस्वरग, जीतेपुहुमीभोग ॥
उठि अर्जुनतूयुद्धकारि, यहैजुताकोयोग ॥ ३७ ॥

उसनिंदाकेसुननेसे रणमेंमरनामारनाही श्रेष्ठहै ऐसाकहते हैं॥हेकुंतीपुत्र ! जोरणमेंशत्रुप्रहारसेमरोगे भी तो स्वर्गको प्राप्तहोवोगे जोजीतोगे तो पृथिवीको भोगोगे तिससे युद्धके अर्थनिश्चय कियेभये उठो ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

दोहा--लाभहानिअरुदुःखसुख, जीतहारिसमजानि ॥
तातेअर्जुनयुद्धकरि, पापलेहुजनिमानि ॥ ३८ ॥

सुखऔरदुःखकोसमानकेरकेतथालाभऔरहानिजयऔरपराजय समानजानिके फिर युद्धकेअर्थयुक्तहो ऐसें पापको नहीं प्राप्तहोवोगे ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ॥
बुद्ध्यायुक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

दोहा--सांख्यबुद्धितोसौंकही, कहतयोगबुधितोहि ॥
ताबुधिकेसंयोगतें, रहेनकर्मनिमोहि ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णभगवान्ने ऐसा आत्मस्वरूपदेखाया अबआत्मस्वरूपज्ञान पूर्वकमोक्षसाधनभूतकर्मयोगकहतेहैं सो ऐसे कि, हेपृथापुत्र येह बुद्धि तुमसे मैंने सांख्यजोआत्मादेहकाविवेकउसमेंकही और इसीको योगमें-यानेकर्मयोगमें सुनो जिसें बुद्धिकेरकेयुक्त कर्मबंधजोसंसारदुःख उसको छोडोगे ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात् ॥ ४० ॥

दोहा--कर्मकरैविनकामना, ताकोहोइननास ॥
अल्पकियेहूधर्मयह, काटतभवभयवास ॥ ४० ॥

जो अब ज्ञानयुक्तकर्मयोगकहेंगे तिसकामाहात्म्यकहतेहैं ॥ इसज्ञानयुक्त-कर्मयोगमेंयानेनिष्कामकर्मयोगमें प्रारंभकाभी नाशनहीं है याने प्रारंभहोके-समाप्त नहोयतौभीनाश नहीं हैं इसकेछूटनेकादोषभी नहीं होताहै इस निष्कामकर्मका लवलेशमात्रभी जन्ममरणरूपबडेभयसे रक्षणकरताहै ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

दोहा—बुद्धिजुनिश्चयवंतकी, एकैहैतूजानि ॥
जिनकेनिश्चयनाहिने, तिनकीबहुविधमानि ॥ ४१ ॥

हे कुरुनंदन ! व्यवसायजोविष्णुपरमात्मातिनमें है आत्मानाममनजिन-कानिऐसेपुरुषोंकीबुद्धि इसनिष्कामकर्महीमें वहएकहैयानेएकमोक्षसाधनहीके-वास्ते है जो अव्यवसायीयानेपरमात्माविनानानापदार्थपशुपुत्रादिकोंकेचाहने-वाले हैं उनकी बुद्धि बहुतहैयानेअनेककामनाओंमें लगीहै ॥ और तहांभी बहुशाखायानेएककार्यकेवास्तेकर्मकरके उसमेंभी अनेकफलमाँगतेहैं जैसे पुत्रार्थयज्ञमेंधनधान्यआयुष्यआरोग्यका मांगना ॥ ४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

दोहा—वेदहिमानतस्वर्गफल, तेअज्ञानीलोइ ॥
कहतजुयोंकछुऔरनहिं, तिनमेंज्ञाननहोइ ॥ ४२ ॥
स्वर्गलाभकीकामना, रहतजुतिनकेचित्त ॥
भोगबड़ाईकेलिये, करतक्रियासोंहित्त ॥ ४३ ॥
भोगबडाईकामना, तिनकोचितहरिलेत ॥
निश्चयकरितेबुद्धिको, नहिंसमाधिमेंदेत ॥ ४४ ॥

हे पृथापुत्र ! जो अज्ञानीजनवेदवादरतयानेवेदोक्तकर्मसेस्वर्गादिकफलहीहोताहै ऐसे कहनेवाले स्वर्गसुखके समान और सुख नहीं है ऐसा कहनेवाले कामनाहीमें चित्तरखनेवाले स्वर्गहीको श्रेष्ठमाननेवाले जिसे पुष्पितयानेकहनेमात्र-मेंरमणीय जन्मकर्मरूपफलकीदेनेवाली तथा जिसमेंभोग और ऐश्वर्यनिमित्त

बहुतउपकरणयानेकर्मसाधनहैं जिसमें ऐसी इस वाणीको कहतेहैं इसीसे उसीवाणीकरके अपहरणभये हैं चित्तजिनके इसीसे भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तहैं उनकेमनमें वह परमात्मविषयकबुद्धि नहीं प्रवर्तहोतीहै४२।४३।४४

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥४५॥

दोहा--त्रिगुणकर्मकोकहतहैं, वेदसुतजितूमित्त ॥
धीरजधरिसुखदुःखसहि, योगक्षेमतजिचित्त ॥ ४५ ॥

हे अर्जुन ! वेदये त्रैगुण्यविषयहैं यानेतीनों गुणोंके कर्म नहीं कौनकहते हैं तुमनिर्द्वंद्वयाने सुखदुःखजयपराजयलाभअलाभ इनद्वंद्वनसे रहितहो अर्थात् इनसेउत्पन्नहर्ष शोकरहितहो नित्यसत्त्वस्थहो यानेसात्त्विककर्मकरो निर्योगक्षेमयानेकोइसाभीलाभऔरलब्धकारक्षणईश्वराधीननजानो आत्मवान्याने परमात्मामेंचित्तराखो ऐसेभयेहुयेनिस्त्रैगुण्यहोयनिकर्मफलोंकात्यागकरो ४५

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

दोहा--सरितासागरकूपसों, सरतजुएकैकाज ॥
तैसेजानेब्रह्मको, लहतवेदकेसाज ॥ ४६ ॥

जो कहाकिवेदोक्तकर्मोंमेंसेतुमसात्त्विककरोउसीकोखुलासाकहतेहैं जैसे सर्वत्रजलसेभरेभये तालावइत्यादिकजलाशयमें मनुष्यकाजितनाप्रयोजनहोता है उतनाहीलेताहै तैसेही वेदके जाननेवालेको सर्व वेदोंमें तावान्याने सात्विककर्महीयोग्यहै ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

दोहा--तोअधिकारिजुकर्ममें, नहींफलनसोंहेत ॥
कर्मनिकेफलछाँडिदे, करिसुकर्मगहिचेत ॥ ४७ ॥

तुम्हारेको कर्महीमेंअधिकारहै फलोंमें नहीं कर्मोंकेफलकाकारण तुम्हारेमें कोईसमयमेंभी मति हो तुम्हारेको अकर्मयानेस्वधर्म योग्ययुद्धादिकर्मोंकानकरनाइसमें संगजोनिष्ठासो कदाचित्नहो ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

दोहा–योगस्थितिह्वैकर्मकरि, सबैसंगकोत्यागि ॥
सिद्धिअसिद्धिसमानगिनि, यहैयोगअनुरागि ॥ ४८ ॥

हे अर्जुन ! सिद्धिऔरअसिद्धिमेंसमबुद्धिहोकेकर्मफलकेसंगकोत्यागिके योगमेंस्थितभयेहुए कर्मोंको करो सिद्धि और असिद्धिमेंजोसमत्वहै वही योगकहाँ है अर्थात्चित्तकेसमाधानत्वकोयोगकहते हैं तात्पर्य चित्तकोसमाधानकरकेयुद्धरूपस्ववर्णोचितकर्मकरो ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

दोहा–बुद्धियोगतेकर्मको, अर्जुनतूघटिजानि ॥
शरणहोहुताबुद्धिकी, दीनकामनामानि ॥ ४९ ॥

हे अर्जुन ! जो बुद्धियोगसे औरकर्महैसो निश्चयकरके अत्यंत नीचहै इसवास्ते बुद्धियोगजोनिष्कामकर्मउसीमें ईश्वरप्राप्तिकी इच्छाकरो फलकी इच्छाकरनेवाले कृपणहैं ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ५०

दोहा–बुद्धियोगदोऊतजै, कहापुण्यकहापाप ॥
योगकर्ममेंचतुरई, सोईकरितूआप ॥ ५० ॥

बुद्धियुक्तजोनिष्कामकर्मीसो इसीलोकमें सुकृतजोपुण्यकर्म और दुष्कृ-

तजोपापकर्म उनदोनोंको त्यागताहै इससे योगकेअर्थयाने बुद्धि योगजोनिष्कामकर्मउसकेवास्ते युक्तहो यहयोग सर्वकर्मोंकेकुशल कारकहै ॥ ५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥ ५१ ॥

दोहा–चाहतनहिंतेकर्मफल, जेपंडितबड़भाग ॥
कर्मबंधकोछाँडिकै, लहतमुक्तिअनुराग ॥ ५१ ॥

जो बुद्धियोगयुक्तहैं वेज्ञानी कर्मजन्य फलको त्यागके जन्मबंधनसेमुक्तभयेहुए निश्चयकरके मोक्ष पदको जातेहैं ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

दोहा–मोहसघनताजबतजै, अर्जुनतेरीबुद्धि ॥
तबपैहौवैराग्यको, चितमेंकरिकैशुद्धि ॥ ५२ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपदुःखको उल्लंघनकरैगी तब जोफलादिकसुननेयोग्य और जोसुनेहों उनके वैराग्यको प्राप्तहोवोगे ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

दोहा–तेरीबुद्धिविरागमें, स्थिररहिहै जबमित्त ॥
तबसमाधिमेंयोगलहि, हैतूनिश्चलचित्त ॥ ५३ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि श्रुतिमेंयानेमेरेउपदेशमेंविशेषकरकेआसक्त निश्चल मनमेंअचल ठहरेगी तब योगको पावोगे ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥ स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

दोहा-जाकिबुद्धिनिश्चलसदा, ताकेचिह्नवताय ॥
कैसेबोलतक्योंरहत, चलतजुहैकिहिं भाय ॥ ५४ ॥

ऐसासुनिकेअर्जुनबूझतेभयेकि, हेकेशव!यानेसर्वकेअंतः करणमेंरहनेवाले-हेईश्वर ! स्थिरबुद्धि समाधिस्थकी कौनसी भाषा यानेउसकावाचककौनहै अर्थात्वहस्थिरबुद्धिकिससेकहाताहै स्थिरबुद्धि कैसे बोलताहै कैसे बैठता है और कैसे चलताहै ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

दोहा-जैहैमनकीकामना, तिनकोतजैजुकोइ ॥
आतमसोसंतोषगहि, निश्चलबुद्धिसुहोइ ॥ ५५ ॥

अबश्रीकृष्णभगवान्स्थिरबुद्धिवालेकास्वरूपकहतेहैंतहाँऐसान्यायहैकि, रहनिरीतिसेंभीस्वरूपनिश्चयहोताहै इससे रहनिरीतिकहतेहैंसो ऐसे कि, हेअर्जुन! जब आपकेमनकरके आपस्वरूपहीमें संतुष्टभया हुआ मनमेंरहेभये सर्व मनोरथोंको सर्वथात्यागताहै तब वह स्थिरबुद्धि कहाताहै ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दोहा-दुखकोतजिभाजैनहीं, सुखचाहैनहिंचित्त ॥
तजैनेहअरुक्रोधभय, निश्चलबुद्धिसुमित्त ॥ ५६ ॥

दुःखोंमेंजिसका मनव्याकुलनहींहोताहैसुखोंमेंनिराशहोताहैऔरजिसके-पुत्रादिस्नेहभयऔरक्रोधनहोयसोमुनिस्थिरबुद्धिकहाताहै ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्राऽनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम् ॥
नाऽभिनंदति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५७ ॥

दोहा-नेहनकाहूसोंकरै, भलेबुरेकीचाहि ॥

भलेबुरेसोंकाजनहिं, स्थिरबुधिलखियेताहि ॥ ५७ ॥

जो सर्वत्रस्नेहरहित उसउस शुभाशुभको पाइकेभी नशुभसेआनंदहो न अशुभसेदुःखीहो तब सो स्थिरबुद्धि कहाताहै ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्य स्तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

दोहा-ज्योंकछुवा निजअंगको, खैंचिआपमेंलेत ॥
तैसेखैंचेइंद्रियनि, तजिविषयनसों हेत ॥ ५८ ॥

जब यह, कछुवा जैसे अपने सर्व अंगोंको समेटिलेताहै तैसे इंद्रियोंके विषयनसे आपकी सर्वइंद्रियोंको खैंचिलेताहै तब उसकी बुद्धि स्थिरहोतीहै ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निर्वर्त्तते ॥ ५९ ॥

दोहा-विषयकरतहैदूरिसों, तजतजुहैआहार ॥
आत्मादेखेजातुहै, अभिलाषानिर्धार ॥ ५९ ॥

इंद्रियनके आहार इंद्रियविषयउनकोजोनहींसेवताहैउसके विषयानुरागविना विषयनिवर्त्तहोतेहैं वहविषयानुराग आत्मस्वरूपको देखके निश्चय निवर्त्तहोताहै ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥ वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दोहा-ज्ञानवंतजेपुरुषहैं, जतनकठिनतासाधि ॥
इंद्रियअतिबलवंतहैं, तऊलगावतव्याधि ॥ ६० ॥

तातेंरोकेइंद्रियनि, मोमेंचित्तलगाय ॥
वशकीनीजिनियेसबै, सोथिरबुद्धिस्वभाय ॥ ६१ ॥

हे कुंतीपुत्र ! आत्मदर्शनविनाविषयानुरागनिवर्त्तहोतानहींऔर उसकीनि-
वृत्तिविनाजोज्ञानी पुरुष बुद्धिकीस्थिरताकेवास्तेयत्नकरताहै तोभी जिससे
ये जोरावरीसेमनकोहरनेवाली इंद्रियाँ जबरईसे मनको हरतीहैं ॥ इससे
योगयुक्तभयाहुआ उन सर्वइंद्रियोंको नियमितकरके मेरेआश्रय रहै जिसके
इंद्रियाँ वशहैं तिसकी निश्चयकरके बुद्धि स्थिरहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृ-
तिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।६२। ६३॥

दोहा–जबधावतहैंविषयको, तिनसोंउपजतसंग ॥
कामजुउपजतसंगते, तातेंक्रोधअभंग ॥ ६२ ॥
मोहहोतहैक्रोधते, क्रोधहितेसुधिनाश ॥
सुद्धिगयेबुद्धचोनशति, बुद्धिनशेमृतिपास ॥ ६३ ॥

बाह्यइंद्रियनकीप्रबलताऔरउनकोवशनकरनेमेंजोदोषसोकहा अब मन-
संबंधीकहतेहैं जोपुरुषमनवशकियेविनाजितेन्द्रियताचाहताहै, सो होनेकीनहीं
जैसेकि, जिसके मनमें विषयोंका चिंतवनहै उस पुरुषको उनविषयोंमें संयम
करतेकरते भी आसक्ति होगी उस आसक्तिसे अभिलाषा होगी अभिलाषासे
क्रोध होगा क्रोधसे मतिभ्रम होताहै मतिभ्रमसे स्मरणशक्तिमें विभ्रम
होताहै स्मृतिविभ्रमसे ज्ञानका नाश ज्ञानके नाशसे स्वरूपसे नष्टहोताहै
याने संसारमें भ्रमताहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ॥ आत्मव-
श्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ प्रसादे सर्व-

दुःखानां हानिरस्योपजायते ॥ प्रसन्नचेतसो ह्याशु
बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

दोहा–रागद्वेषकोजोतजे, करैविषयकीसेव ॥
इंद्रियजोनिजवशिकरै, लहैशांतिकोभेव ॥ ६४ ॥
शांतिजवहियहगहतुहै, होतदुखनकीहानि ॥
बुद्धितवहिंथिरहोतहै, यहतुमलीजोजानि ॥ ६५ ॥

वश्यहैमनजिसका ऐसापुरुष रागद्वेषकरकेरहित और आपके वश्य ऐसी इंद्रियोंकरके विषयोंकासेवनकरताभया प्रसन्नताकोप्राप्तहोताहै यानेनिर्मलांतःकरण होताहै तब निर्मलचित्तहोनेसे इसके सर्वदुःखोंका नाश होताहै उस प्रसन्न चित्तवालेकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होतीहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ॥
न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

दोहा–योगविनाबुधिहीनहीं, बुधिविनहोइनध्यान ॥
ध्यानविनाशान्तीनहीं, ताविनसुखनसुजान ॥ ६६ ॥

अयुक्तजोसमतारहितहै उसकी बुद्धि नहींस्थिर होतीहै और उसअयुक्तके भावनायानेआस्तिकता सोभी नहीं होतीहै और जिसकेभावना नहीं उसके शांति नहीं जिसके शांतिनहीं उसको कहाँसेसुखहोगा ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

दोहा–इंद्रियजितजितफिरतहैं, निजमनलावतखैंचि ॥
मनुजबुद्धिहरलेतिहैं, वायुनावजोऐंचि ॥ ६७ ॥

जिनइंद्रियरोकीसबै, ठौरठौरमेंआनि ॥
विषयत्यागहीजिनकियो, थिरबुधिताहीमानि ॥ ६८ ॥

जिससे कि, जो मन विषयमेंप्रवर्त इंद्रियोंको अनुहरताहै सो इस पुरुषकी बुद्धिको वायु जलमें नावको ऐसे हरताहै तिससे हे महाबाहो जिसकी सर्व इंद्रियाँ इंद्रियोंके विषयोंसे सर्वथा रोकीगईहैं तिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥६९ ॥**

दोहा-जोजनजागतहैतहां, जहाँसवनकीराति ॥
जीवजहांजागतसबै, सोमुनिकोनिशिभाति ॥ ६९ ॥

सर्वभूतप्राणीमात्रोंकी जोरात्रि अर्थात् जिसविषयमें सर्वसोएसे रहेहैं ऐसीपर मात्मविषयाबुद्धि तिसमें इंद्रियसंयमी जागताहै याने आत्मस्वरूपको देखताहै जिसशब्दादिविषयरूपरात्रिमें सर्व भूत (प्राणी) जागतेहैं सो ज्ञानीजनकी रात्रिरूप है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्व-त् ॥ तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

दोहा-जैसेसबजलसरितको, मिलतसमुद्रहिआय ॥
ज्योंसमाहिंसबकामना, शांतिरहैतहँआय ॥ ७० ॥

जैसे आपहीपरिपूर्ण सर्वदा एकसेभरेभये समुद्रमें जल बाहरसे भरताहै तैसे जिसको सर्व कामना प्राप्तहोयहैं सो शांतिको प्राप्त होताहै जोकाम-नाओंकी इच्छाकरनेवालाहै सो नहीं शांतिको पावताहै ॥ ७० ॥

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥**

दोहा–तजकैसबमनकामना, जोनिसप्रेहीहोइ ॥
अहंकारममतातजे, तामाहँशांतिजुहोइ ॥ ७१ ॥

जो पुरुष सर्व अभिलाषनको छोड़के इच्छारहित विचरताहै सो ममतारहित और अहंकाररहितभयाहुआ शांतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वाऽस्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दोहा–ब्रह्मज्ञानतोसोंकह्यो, तातेमोहनशाइ ॥
सोबुधिअंतसमयरहै, मिलैब्रह्ममेंजाइ ॥ ७२ ॥

हे पृथापुत्रअर्जुन ! यहजोनिष्कामकर्मरूपमैंनेकही सो ब्रह्मप्राप्तिकारकस्थितिहै इसको पाके नहीं मोहकोपावताहै इसमें अंतकालमेंभी स्थितहोके ब्रह्मसदृशमुक्ति पावै अर्थात् जोसर्वकाल ऐसाही रहै उसकीमुक्तिको संदेहक्याहै ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां द्वितीयाऽध्यायप्रवाहः ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

दोहा–बुद्धिभलीहैकर्मते, कृष्णकहीतुमजोहि ॥
कर्मभयानकमैंकहा, केशवडारतमोहि ॥ १ ॥

ऐसे श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुनने विचार किया कि, भगवानने

प्रथम मेरेको 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं' इत्यादिवाक्योंकरके ज्ञानयोग उपदेश किया फिर 'बुद्धिर्योगेत्विमांश्रृणु' इत्यादिकरके कर्मयोगउपदेशकिया उसमेंभी 'श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला' इत्यादिकरके निष्काम-कर्मसे आत्मज्ञानहीकी प्राप्तिकही इससेनिश्चय होताहै कि, कर्मयोगसे जो पीछे आत्मज्ञान कहा सोई श्रेष्ठहै ऐसे विचारके अर्जुन भगवानसे कहने लगे कि, हे जनार्दन! जो कि, कर्मयोगसे ज्ञानयोगही तुमने श्रेष्ठ मानाँहोय तो हे केशव! घोर कर्ममें मेरेको क्यों युक्तकरतेहो ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

दोहा-वचनसुनेसंदेहके, मोबुधिहैभरमाँति ॥
निश्चयकरिएकैकहौ, लहौंमुक्तिजाभाँति ॥ २ ॥

ऐसे मिश्रित वाक्यकरके मेरी बुद्धिको मोहतेसेहो जिसकरके मैं कल्याणको प्राप्तहोऊं सो एक निश्चयकरके कहो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

दोहा-निष्ठाजोद्वैभाँतिकी, पहिलेकहीवनाय ॥
शुद्धनकोज्ञानैभलो, कर्मनुकर्मबताय ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वाक्यसुनके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये। हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें पूर्वकालमें मैंने दो प्रकारकी निष्ठा कहीहै सो सांख्य-वालोंको ज्ञानयोगकरके और योगिनको कर्मयोगकरके ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

दोहा-कर्मविनाकीनेपुरुष, ज्ञानहिंलहैनकोइ ॥

कियेबिनासंन्यासके, दोऊमुक्तिनहोइ ॥ ४ ॥

शास्त्रोक्तकर्मोंके किये विना पुरुष निष्कर्मता जो सर्वेंद्रियविषयनिवृत्तिपूर्वकज्ञाननिष्ठा उसको नहीं प्राप्तहोताहै और कर्मके न करनेसेभी सिद्धिको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

दोहा–कर्मकर्मबिनाछिनकहूं, रहैनकोऊजंतु ॥
विवशभयेकर्मनिकरै, बांधैमायातंतु ॥ ५ ॥

कोईकालमें क्षणभरभी कर्मकियेविना कोईभी पुरुष निश्चय करके नहीं रहता है क्योंकि सर्वसत्त्वादिप्रकृतिके गुणोंकरके परवश कर्म करनाही पड़ता है ॥ ५ ॥

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ॥
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

दोहा–कर्मेंद्रियरोकेरहै, मनविषयनकोध्यान ॥
कपटीमूरखहैबड़े, ताकोमूरखमान ॥ ६ ॥

जो ज्ञानयोगमें प्रवर्त्तहोनेको कर्मेंद्रियोंको हठसे संयममें रखके इंद्रियविषयोंको मनकरके सुमिरतासुमिरता रहता है सो मूढमति मिथ्याचार याने वृथायोगी कहाता है ॥ ६ ॥

यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

दोहा–मनसोंरोकेइंद्रियनि, कछुकर्मनिपरिचाइ ॥
फलअभिलाषाकामजे, तातेंयहअधिकाइ ॥ ७ ॥

और जो इंद्रियोंको मनसे नियममें रखके विषयोंमें आसक्त न भयाहुवा कर्मेंद्रियोंकरके कर्मयोगको करता है हे अर्जुन ! सो श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

दोहा-अनकरिवेकेकर्मकहँ, भलेसुतूकरिमित्त ॥
विनकीनेतेकर्मके, देहनानिवहैमित्त ॥ ८ ॥

तिससे तुम स्ववर्णउचित कर्म करो क्योंकि कर्म नकरनेसे कर्मकरना श्रेष्ठहै और कर्मविनां तुम्हारा ज्ञानयोग करनेको शरीरनिर्वाहभी न सिद्ध होगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ॥
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

दोहा-यज्ञकर्मविनकर्मते, जगबंधनतेहोत ॥
तिहिकाजैकर्मनिकरो, मेटिफलनकोगोत ॥ ९ ॥

जो कर्मसे बंधन कहाहै सो ऐसाकि, जो यज्ञार्थकर्म है उससे अन्यत्र कर्म करनेसे यह मनुष्य कर्मबंधनको प्राप्तहोता है हे कुंतीपुत्र! तुम फलासंग छोडेभये उस यज्ञहीके अर्थ कर्म करो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

दोहा-यज्ञसहितरचिजगतको, कहीविधाताबात ॥
उदयतुम्हारोयज्ञते, कामधेनुयहतात ॥ १० ॥

प्रजापतिजोपरमात्मासो पुरा याने सृष्टिकालमें यज्ञसहित प्रजाको उत्पन्न करके बोले कि,इस यज्ञकरके तुम वृद्धिको प्राप्तहोउ यह यज्ञतुम्हारे इच्छितकामनाओंको पूरनेवाला होउ ॥ १० ॥

देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

दोहा—यज्ञनकरिदेवनियजो, देवतुम्हैंफलदेहु ॥
बुद्धिपरस्परयोंकरौ, मनवांछितफललेहु ॥ ११ ॥

इसयज्ञकरके तुमदेवताओंकोपूजिके उनकोबढावो वे तुम्हारे पूजेबढाये भये देव तुम्हारामनोरथपूरतेभये तुमको बढावेंगे ऐसेपरस्परबढातेभये तुमऔर देवता दोनों श्रेष्ठ कल्याणको प्राप्तहोवेंगे ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

दोहा—इष्टभोगकोदेतहैं, देवयजेतेमित्त ॥
विनपूछेतेलेतहैं, देहैंचोरनचित्त ॥ १२ ॥

जोयज्ञकरोगेउसकरकेवर्द्धितकियेभये देव तुमको इच्छित भोग निश्चय-करके देंगे उनकरके दियेभयेभोगोंको उनको दियेविना जो भोगेगा सो चोर है इससे चोरतुल्य दंड पावेगा ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात्॥१३॥

दोहा—यज्ञशेषजेखातहैं, पापनडारतधोइ ॥
यज्ञविनाजोखातहैं, अघनिलहतुहैंसोइ ॥ १३ ॥

देवादिपूजनरूपयज्ञका शेष याने उबरेभये अन्नादिकके भोगनेवाले संतपुरुष सर्वपापोंकरके मुक्त होतेहैं और जो आपहीकेवास्ते अन्नको पचातेहैं वे पापी पापजैसाहोयतैसाही खातेहैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

दोहा-जीवअन्नतेहोतहैं, अन्नमेहतेहोइ ॥
मेहयज्ञतेहोतहैं, यज्ञकर्मतेसोइ ॥ १४ ॥
कर्मजोउपजतवेदते, वेदब्रह्मतेमानि ॥
ब्रह्मजुभासतजगतमें, ताहियज्ञकरिमानि ॥ १५ ॥
वेदवतायेकर्मते, नरनकरतजेकोइ ॥
पापीइंद्रियवशभये, जनमरहतहैंखोइ ॥ १६ ॥

अबदिखातेहैंकि,लोकदृष्टिओरशास्त्रदृष्टिसेभीसर्वकामूलयज्ञहीहैसो ऐसेकि सर्वभूतप्राणी अन्नसे होतेहैं अन्नकीउत्पत्ति वर्षासेहै सो लोकप्रसिद्ध देखनेमें-आताहै वर्षा यज्ञसे होतीहै यहशास्त्रप्रसिद्ध है सो यह श्लोक ॥ “ अग्नौप्रा-स्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततः प्रजाः ॥ १ ॥ ” यज्ञकीउत्पत्ति यज्ञकर्त्ताकेकियेभयेकर्मसे होतीहै सोकर्म-ब्रह्मसे होतीहै ऐसेजानो ब्रह्मनामप्रकृति इहां प्रकृतिहीकारूपशरीरब्रह्मजानना तहांप्रथमश्रुतिः “ तदेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नंच जायते ” तथाइहांभीकहेंगे “ मम-योनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् ”इत्यादिप्रमाणोंसेयहां यहीअर्थहैकि, प्रकृ-तिकोब्रह्मकहतेहैंउसीकापरिणामयहशरीरइससे कर्महोताहै यहशरीर अक्षरस-मुद्भवयानेअक्षर जो जीवतिसकरकेसहितउत्पन्नहोताहै यानेसजीवशरीरकर्म-काकारकहै जिससेकि, शरीरहीकर्मकारकहै ईसीसे सर्वगतयानेसर्वाधिकार-योग्य शरीर यज्ञमें नित्य प्रतिष्ठितहै यानेयज्ञका मूलकारण है ऐसे यहई-श्वरकरके प्रवर्तमान इसचक्रको जोकर्माधिकारी किंवाज्ञानकर्माधिकारी नहीं अनुवर्त्तताहै यानेयज्ञविनाशरीर पोषताहै हेअर्जुन ! सो इंद्रियाराम पापआयुष्य वृथा जीवताहै जोचक्रकहाउसकाखुलासा यह कि, अन्नसे शरीर अन्न वर्षासे वर्षा यज्ञसे यज्ञ कर्मसे कर्म शरीरसे शरीर अन्नसे ऐसे प्रवर्त्तै है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

दोहा–आतमसोंसंतुष्टजे, आतमसोंरतिहोइ ॥
त्रिपतिजुआतममेंरहैं, ताहिनकरनोकोइ ॥ १७ ॥
जाहिकरेतेपुनिनहीं, विनकीन्हेंनहिंदोष ॥
ब्रह्मादिकसोंकाजनहिं, आतमहीसोंमोष ॥ १८ ॥

कर्मनकरनेसेकिसकोदोषनहींसोकहतेहैंसोऐसाकि, जो मनुष्य आत्मर तिहो याने आत्मस्वरूपहीमें आनंदहोय और आत्मस्वरूपही से तृप्त हो अन्नादिकसेप्रयोजननहीं और आत्माही में संतुष्टहो उसके कर्त्तव्यता नहीं है उसके कर्मकरनेसे नकरनेसे भी यहां कुछ प्रयोजन नहींहै और इसके सर्वभूतप्राणिनमें कोईऐसाभिनहीं जिससे कुछप्रयोजनहोय तात्पर्य ऐसामनुष्यकर्मकरै अथवा न करैतोचिंतानहीं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

दोहा–फलकामनिकोंछाँडिकै, कर्मकरौतुमनित्त ॥
संगविनाकर्मनकरै, भक्तिलहतहैमित्त ॥ १९ ॥

जिससेकि, ऐसेकोदोषनहींतुमतोद्रव्यकुटुंबादिसेरतहोइससेकर्ममें असक्तनभयेहुये करनेयोग्य स्ववर्णोचितकर्मको निरंतर करो क्यों कि फलेच्छारहित कर्म करतेकरते पुरुष परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

दोहा-लहीसिद्धिजनकादिहू, कीन्हेंकर्मसमाज ॥
लोकरीतिजेदेखिकै, तुमहूकरोसुकाज ॥ २० ॥

अन्वयहदिखातेहैंकि, ज्ञानीकोभीकर्महीश्रेष्ठहैसोऐसेजिससेकि, जनकादि-कज्ञानीभी कर्मकरकेही मोक्षकोप्राप्तभये तथालोकसंग्रहको भी देखतेभये कर्मकरनेकोयोग्यहो ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

दोहा-वड़ेकुआचारहिकरैं, सोईमानैंआन ॥
ताहीमगसवजगचलै, वड़ेकरैंजुप्रमान ॥ २१ ॥

यहांकारणयहहैकि, श्रेष्ठपुरुष जोजो आचरण करतेहैं दूसरे लोगभी वैसा-हीआचरणकरतेहैं सो श्रेष्ठपुरुष जोप्रमाणकरताहै सर्वलोगभी वही प्रमाणकरने लगतेहैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

दोहा-मोकोंकछुकरनोनहीं, तिहूँलोकमेंकाज ॥
कछुनलह्योलहिवेनकछु, कर्मकरतयासाज ॥ २२ ॥

हेपृथापुत्रअर्जुन! तीनोंलोकोंमें मेरेको कुछ कर्त्तव्य नहीं है तथा नहींप्राप्तऐसाभीनेहीं औरप्राप्तहोयऐसाभीनहींअर्थात् सर्वमेराहीहै तथापि कर्ममें निश्चयकरके वर्त्तमान रहताहौं याने लोगोंकोसिखानेको कर्म करता रहताहौं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ॥
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

दोहा-जोहूँकर्मनिनहिंकरौं, रहुँआलसहितमीत ॥
त्योंहींसवनररहूरहैं, मेरेमनयहरीत ॥ २३ ॥

हे अर्जुन! जोकदाचित् सावधान भयाहुआ मैं कर्ममें न वर्त्तमान रहौं तो निश्चयकरके सर्व मनुष्य मेरीही रीतिपर चलनेलगैं याने वे भी निरर्थ मानके कर्म नकरैं ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

दोहा–जोहौंकर्मनिनहिंकरौं, होयसबनकोनाश ॥
प्रगटाऊंसंकरतबै, हनौप्रजायाआस ॥ २४ ॥

जोकदाचित्मैं कर्म नकरौं तौ येलोकभीऐसेजानेंगेकि, जोकर्म श्रेष्ठहोतातोश्रीकृष्णकरतेइससेकर्मतुच्छहै ऐसाजानके कर्मछोड़केनष्टहोंगे तबमैं वर्णसंकरका कर्त्ताहोऊंगा और इसप्रजाका मारनेवाला होऊंगा ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

दोहा--मूरखजोकर्मनिकरै, करिबहुप्रीतिसुभाय ॥
लोकलाजज्ञानीकरै, मनतासोंनलगाय ॥ २५ ॥

हेअर्जुन ! जैसे अविद्वान्लोग कर्ममें आसक्तभयेहुये कर्म करतेहैं तैसे विद्वान् असक्तभयाहुआ लोकसंग्रहको करनेकीइच्छाकियेभये कर्म करे २५

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

दोहा–तिनकीबुधिभेदनतजै, रहैकर्मलपटाय ॥
सावधानज्ञानीरहै, पोषेतेइदाय ॥ २६ ॥

जोज्ञानीहैसो ज्ञानयोगयुक्तभयाहुआ कर्मकरताकरता जोकर्मसंगी अज्ञानीहैं उनको सर्वकर्मोंकी प्रीति उपजावै याने उनसे प्रशंसाकरके कर्म करावै और बुद्धिभेद याने कर्ममें अश्रद्धा न करावै ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

दोहा-मायाकेगुणकरतहैं, सवैकर्मयहजानि ॥
अहंकारकरिमूढजे, लेतअपनपौमानि ॥ २७ ॥
गुणअरुकर्मविभागको, जानततत्त्वज्ञकोय ॥
इंद्रियविपयनकोपगी, आपुमगनहींहोइ ॥ २८ ॥

हेअर्जुन ! सर्व कर्म प्रकृतिके सत्त्वादिगुणोंकरके कियेभयेहैं जो अहंकारसे मूढचित्तहै सो मैं कर्त्ताहौं ऐसे मानताहै और जो सत्त्वादिकगुण और उनके कर्मके तत्त्वकाज्ञाताहै सो जानताहैकि, सत्त्वादिगुणआपआपकेकार्योंमें वर्त्तमानहैं ऐसा जानकेआसक्त नहीं होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

दोहा-मायागुणकरिमूढजे, रहैं विपयलवलाइ ॥
तामगतेज्ञानीतिन्हैं, देहनकहूँचलाय ॥ २९ ॥

प्रकृतिकेसत्त्वादिकगुणकार्योंकरके भूलेभये जोपुरुष वे सत्त्वादिगुणकर्मफलोंमें आसक्तहोतेहैं उन अल्पज्ञमंदोंको सर्वज्ञपुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करै ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

दोहा-चितअध्यातमआनिकै, कर्मनिमोमहिराखि ॥
अहंकारममतातजौ, युद्धहिकोंअभिलाखि ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! अध्यात्मजोस्वभाव 'स्वभावोध्यात्मउच्यते' इसप्रमाणसे क्षत्रियकाजोशूरत्वादिकस्वभावहै उसमें चित्तको लगायेभये उस करके सर्वकर्म

मेरेमें अर्पणकरके निराशी याने फलाशारहित निर्मम याने कर्त्तापनका ममत्वछोड़के कर्मबंधनभयरूपज्वरसे छुटेभये युद्धकरो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ॥
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेपि कर्मभिः ॥३१॥
ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

दोहा—जेनितयामेरेमतहि, श्रद्धासोंगहिलेत ॥
जिनकेजियनिहकम्र्महै, कर्मकरैकरिचेत ॥ ३१ ॥
जोयामेरेमतहिको, करतनदोषलगाय ॥
तेमूरखजानतनहीं, हैअचेतकेभाय ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य इस मेरेमतको नित्य धारणकरतेहैं और जोइसमें श्रद्धाहीरखतेहैं और जो इसकीनिंदारहितहैं वेभी कर्मबंधनोंसे छुटेंगे और जो इस मेरेमतकीनिंदाकरतेभये इसकोग्रहणनहींकरतेहैं वे सर्वज्ञानविषयमेंमूढ उन अज्ञानिनको नष्टभये जानो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किंकरिष्यति ॥ ३३ ॥

दोहा--ज्ञानवंतहूकरतहैं, अपनीप्रकृतिसमान ॥
सबकोऊजिनप्रकृतिवश, एकैतेजुअज्ञान ॥ ३३ ॥

जो ज्ञानवान्है सोभी आपकेजातिस्वभावकेसदृश चेष्टाकरताहै अज्ञकरेतोशंकाहीक्याहै सर्वभूतप्राणी आपकेजातिस्वभावकोअनुसरतेहैं यहांनिग्रहक्याकरेगा ॥ ३३ ॥

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौव्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

दोहा-सबइंद्रियकोविषयमें, रागद्वेषजोहोय ॥
तिनकेवशनरजाइनहिं, रहैंजुअरिसमजोय ॥ ३४ ॥

जबकर्मस्वभावहीसेहै और उसका निग्रहनहीं तब उपायक्या सोकहतेहैं कर्मेंद्रियऔर ज्ञानेंद्रिय इनके निमित्तरागद्वेष युक्तहैं तिनके वशमें न होना क्योंकि वे इसकेशत्रुहैं याने जीवकेबंधनकारकरागद्वेषहीहैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनंश्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

दोहा-न्यूनहोयजोनिजधरम, परतेअधिकोमानि ॥
मीचभलीनिजधर्ममें, पारधर्मभयजानि ॥ ३५ ॥

जोरागद्वेषकेवशहोनेसेस्वधर्मकात्यागऔर परधर्ममेंनिष्ठाहोतीहै उसका निवारणकरतेभये श्रीकृष्णकहतेहैंसोऐसेकिनेत्रादिइंद्रियोंकी प्रीतिसे अर्जुन स्वधर्मोको त्यागनेलगे कि इनस्वजनोंको देखकेमेरेदयाआतीहै इससेयुद्धन-करोंगा भीखमाँगिखाउँगासोनिवारतेहैं जैसे कि, श्रेष्ठकर्मारंभ अन्यकेधर्मसे स्वधर्म न्यूनभी कल्याणकारकहै स्वधर्ममें मरना कल्याणदायकहै परधर्ममें मरनेसेभी अतिभयकारक है ॥ ३५ ॥

अर्जुनउवाच ।

अथ केनप्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

दोहा-कहियेप्रेरेकौनके, पुरुषकरतहैंपाप ॥
याकेइच्छानाहिनै, कर्मदेतसंताप ॥ ३६ ॥

अर्जुनभगवान्से पूंछतेहैं कि, हे वृष्णिवंशोत्पन्नकृष्ण! आपने कहा स्व-धर्महीश्रेष्ठहै अन्यधर्मभयदायकहै ऐसा जो जानताभीहै और स्वधर्मपूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवर्तहोके विषयभी त्यागेहैं तौभी फिर यह पुरुष विषयइच्छा

नकरताभी बलात्कार विषयोंमें युक्तकिया सरिखा किंसका प्रेराभया पांपोंको करतां है ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

दोहा–यहजुकामअरुक्रोधहै, रजगुणहीतेंहोय ॥
क्योंहूपूरणहोइनहिं, पापीकोअरिजोय ॥ ३७ ॥

अर्जुनकाप्रश्नसुनकेश्रीकृष्णभगवानूकहतेहैंकि, जोयह रजोगुण से प्रगट काम यानेकामनासो बडापापी अतिविषय सेवनरूपबडेआहारकाकरनेवाला यही क्रोधरूपहोताहै ईसको इसज्ञानविषयमें वैरि जानो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

दोहा–आगिढपैज्योंधूमसों, दर्पणमलकेभाय ॥
गर्भत्वचासोंजोढके, जगैनताहीदाय ॥ ३८ ॥

जैसे अग्नि धुवाँकरकेढकताहै और मलकरके दर्पण ढकताहै जैसे गर्भ जराकरके तैसे यहज्ञान उसकामनोंकरके ढकाहै ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुःपूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

दोहा–ज्ञानीहूकेज्ञानइन, वैरीराख्योझाँपि ॥
कामसुदुःसहआग्निहै, सकैनकोऊढाँपि ॥ ३९ ॥

हे कुंतीपुत्र ! इसज्ञानीकानित्यवैरीदुःखसेभीनभरसके ईससेअपरिपूर्ण ईच्छाचारी ऐसेइसकामकरके ज्ञान ढकरहाहै काम याने विषयवासना ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनोबुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

दोहा-इंद्रियमनअरुबुद्धिहै, एईजाकोस्थान ॥
इनकरिसोनाशतजुहै, ज्ञानीहूकोज्ञान ॥ ४० ॥

जबशत्रुकोजीतनाहोयतबप्रथमउसकेस्थानस्वाधीनकरनाइससेइसकाम-नाकेस्थानकहतेहैंसोवेयेकि, सर्वइंद्रियांमनऔरबुद्धियेकामनाके स्थानकह-तेहैं यहे ईनहींकरके ज्ञानको आच्छादितकरके जीवको मोहित करता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

दोहा- अर्जुनताते प्रथमहीं, तूइंद्रिनकोरोकि ॥
हरतज्ञानविज्ञानजो, यापापीकोठोकि ॥ ४१ ॥

हे भरतवंशिनमेंश्रेष्ठ ! तिससे तुम प्रथमें इंद्रियोंको संयममेंकरके स्वरूप ज्ञानऔरविज्ञानजोभक्तिइनकेनाशनेवालेइसकामपापीको निश्चय मारो ४१ ॥

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परंमनः ॥
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

दोहा-इंद्रियहैंसबतेपरे, तिनतेपरमनजोय ॥
मनतेपरेजुबुद्धिहै, तातेआतमहोय ॥ ४२ ॥

जोज्ञानकेविरोधिहैंउनमेंविद्वान्लोगइंद्रियोंकोप्रबलकहते हैं इंद्रियोंसे मनप्रबलहै और मनसे बुद्धिप्रबलहै और जो बुद्धिसे प्रबलहै सो, वह आत्माहै ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–आतमलखिबुधितेपरे, मनकोकरिवशमाँह ॥
कामरूपअरिदुसहको, मारिडारिनरनाँह ॥ ४३ ॥

हे महाभुजअर्जुन ! ऐसेबुद्धिसे पर आत्माको जानकर और स्वेच्छाचारी दुःसह कामनारूप शत्रुको जाँनके फिरमनको बुद्धिकरके रोंकके ईस शत्रुकोमारो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायांश्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां तृतीयोध्यायप्रवाहः ॥ ३ ॥

प्रकृतिसंसर्गी मुमुक्षू सहसा ज्ञानयोगाधिकारी नहीं होसकता है इससे तीसरे अध्यायमें उसको कर्म करनाही उपदेश तथा ज्ञानयोगीकोभी कर्तृत्वत्यागपूर्वक कर्म करनाही उत्तम कहा और जनसंग्रहके वास्तेभी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा. अब जो जगत् उद्धारके वास्ते मन्वंतरके आदिमें इसीकर्मयोगका उपदेश कियाथा उसीका इस चौथे अध्यायमें दृढ करते हैं. ज्ञानयोगभी इसीके अंतर्गत है; इससे इसकी ज्ञानयोगाकारता दिखायके कर्मयोगका स्वरूप और भेद तथा उसमें ज्ञानांशकी प्रधानता तथा इसीप्रसंगसे भगवदवतारनिश्चयभी कहते हैं ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

दोहा–यहैयोगहैमैंकह्यो, पहिलेरविसोंआय ॥
तिनहूँतबमनुसोंकह्यो, मनुइक्ष्वाकुसुनाय ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि जो यह योग मैंने तुमसे कहा सो केवल अब युद्धोत्साहबढानेको तुम्हारेहीसे नहीं कहा इसको कल्पकी

आदिमेंभी कहा है सो सुनो ॥ मैं प्रथम इस अव्यय कर्मयोगको सूर्यसे कहताभया सूर्य वैवस्वतमनुसे कहतेभये मनुइक्ष्वाकुसे कहतेभये ॥ १ ॥

एवंपरंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

दोहा–परंपरायायोगको, जानतहैंऋषिराय ॥
बहुतदिनाबीतेभयो, सांख्ययोगनशाय ॥ २ ॥

ऐसेहीपरंपरासेप्राप्त इसको राजऋषि जानतेभये हेपरंतप ! सो यह योग इससमयमें बहुत कालकरके नष्टभया था ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

दोहा–वहैपुरानोयोगमैं, तोकोदियोबताय ॥
यातेतूमोमीतहै, औरभक्तिकेभाय ॥ ३ ॥

सोईयह पुरातन योग मैंने तुम्हारेसे आज कहा क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखाहो यह उत्तम रहस्यहै ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

दोहा–तुमतौप्रगटेहौअबहिं, सूरपुरातनदेव ॥
तुमकबतासोंहोकह्यो, हौंजानोयहभेव ॥ ४ ॥

ऐसे सुनिके अर्जुन कहने लगेकि, तुम्हारा जन्म अभी भया विवस्वानका जन्म प्रथमभया तुम आदिमें उनको कहतेभये ऐसे इसको हम कैसे जाने ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

दोहा–तेरेअरुमेरेजनम, बीतेहैंबहुवार ॥
तूतिनकोजानतनहीं, हौंजानतनिरधार ॥ ५ ॥

अर्जुनके प्रश्नका श्रीकृष्ण भगवान् उत्तर देतेहैं इसीमें आपके अवतार-काभी प्रयोजन कहेंगे सो ऐसे कि, हे परंतप याने शत्रुनको संतापित करने-वाले अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतजन्म व्यतीतभयेहैं उन सबको मैं जान-ताहौं तुम नहीं जानतेहो ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

दोहा–अजअविनाशीप्रगटहौं, जगतईशकरतार ॥
अपनीइच्छालेतहौं, शुद्धसत्त्वअवतार ॥ ६ ॥

यहांकारणयहकि, मैंअविनाशीसर्वांतर्यामीहौंसर्वभूतोंकाभी ईश्वर भया-हुवा तथाअजन्मा भयाँहुवाभी मेरा स्वभावजो सौशील्य वात्सल्यशरणाग-तरक्षकत्वइत्यादिकतिसको आश्रितकरके यानेउसस्वभावहीसे आपकेज्ञान-सहित अवतारलेताहौं जीवकोज्ञाननहींरहताहै मेराज्ञानअखंडहैमैंकेवलस्वभ-क्तस्वसेतुरक्षणार्थअवतारलेताहौं इसका कारण अगाड़ीके श्लोकोंमेंहै ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

दोहा–जबजबभारतधर्मकी, ग्लानिहोतदिखराय ॥
बढतअधर्मजहाँतहाँ, तौहौंजनमतआय ॥ ७ ॥

हेभारत ! जब जब निश्चयपूर्वक धर्मकी हानि अधर्मकी वृद्धि होती है तब मैं रूपको धारणकरताहौं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

दोहा-साधुनकीरक्षाकरौं, पापीडारौंमारि ॥
स्थापतरीतिसुधर्मकी, युगयुगमाँझविचारि ॥ ८ ॥

जोस्वस्वभावसेअवतारकहा वहस्पष्टकरते हैं धर्महानिअधर्मवृद्धिदेखके मैं साधुनके संरक्षणकेवास्ते और दुष्टनके विनाशकेवास्ते युग युगमें धर्मस्थापनके वास्ते अवतारलेताहौं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

दोहा-मेरेजन्मऽरुकर्मको, तत्वलहैजोजानि ॥
देहतजैमोकोमिलै, वहुरिनजनमैंआनि ॥ ९ ॥

हेअर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्ययानेप्राकृतनहीं हैं ऐसे जो निश्चयकरके जानताहै सो देहको त्यागिके फिरिके जन्म नहीं लेताहै मेरे को प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

दोहा-रागक्रोधभयकोतजै, मोमेंराखैभाय ॥
वहुतज्ञानतपकरिसुजन, मोहीमाँझसमाय ॥ १० ॥

व्यतीतभयेहैंसांसारिकअनुरागभयऔरक्रोधजिनकेतथासर्वत्रमेरेहीको-जानतेहैं औरजोमेरेहीआश्रितहैं ऐसेवहुत मेरेस्वरूपज्ञानरूपतपकरकेपवित्र-हुऐभये मेरीसदृशताको प्राप्तभये हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

दोहा-जोमोकोजैसेभजै, हौंतैसोफलदेत ॥
अर्जुननरसबजक्तमें, मेरोमगगहिलेत ॥ ११ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! सर्व मनुष्यममवर्त्मयानेजोजोसकामनिष्काम वेदमें-मार्गकेहैंवेमेरेहीकहेमार्गहैं. उन्हींमार्गोंके आश्रितकर्मकरतेहैं तहां जो मेरेको जैसे भजतेहैं मैं उनको वैसेही भजताहौं; याने जो सकामइंद्रादिरूपमेरेको भजतेहैं उनको ॥ ' तदेवाश्रितस्तत्सूर्यअहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ता ' ॥ इत्यादि प्रमाणसे इंद्रादिलोकपुत्रादिकामनादेताहौं और जोनिष्काममेरेकोसर्वेश्वर जानकेसर्वकर्म ' कायेनवाचामनसेंद्रियैर्वा' इत्यादिप्रमाणसेमेरेअर्पणकरतेहैं उनको मेरेस्वरूपवैभवको प्राप्तकरताहौं ॥ ११ ॥

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

दोहा—कर्मसिद्धकीचाहकरि, पूजतिदेवनिलोय ॥
कर्मनिकीनरलोकमें, सिद्धिवेगदैहोय ॥ १२ ॥

जोकर्मोंकीसिद्धिकीइच्छाकरतेभये इसलोकमें देवताओंकायजनकरतेहैं उनकीनिश्चयँकरके शीघ्र मनुष्यलोकमें कर्मसे उत्पन्न सिद्धि होती है ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३॥

दोहा—चारोंवर्णजुमैंरचे, करिगुण कर्म विभाग ॥
हौंयाकोकरतारहौं, ताहिमोहिंअनुराग ॥ १३ ॥

गुणकर्मविभागसेजैसेसत्वगुणप्रधानब्राह्मणउनकेशमदमादिकर्म सत्वरज-प्रधानक्षत्रियउनकेशूरत्वादिकर्म रजस्तमःप्रधानवैश्यउनके कृषिवाणिज्यादिकर्म तमःप्रधानशूद्रउनकेपरिचर्यात्मक कर्म ऐसेगुण कर्मविभागकरके चातुर्वर्ण्य यह संसार मैंने सृजाहै उसका अविनाशीकर्त्ता भी मेरेको अकर्त्ता जानो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते १४॥

दोहा-कर्मनमोंकोलगतहैं, मोहिंनफलकीचाह ॥
ऐसोजोमोकोलखे, कर्मनबाँधैताह ॥ १४ ॥

जो प्रथमकहाकि, मेरेको अकर्त्ताजानो उसका कारण कहतेहैं सो ऐसा कि, मेरेको कर्मफलमें इच्छा नहीं इससे मेरे कर्म नहीं लिप्तहोतेहैं ऐसा मेरेको जो जानताहै सो कर्मोंकरके नहीं बँधता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरुकर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

दोहा-जोचाहतहैंमुक्तिको, कर्मकरैतिनआय ॥
तातेतूहूंकर्मकरि, पहिलनिकोमतपाय ॥ १५ ॥

पूर्वसमयके मनुइत्यादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऐसे जानके कर्म कियाहै तिससे तुम पूर्व मुमुक्षुनकरके कियेभये कर्म हीको करो ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६

दोहा-कौनअकर्मसुकर्मको, रहितपंडितौमोहिं ॥
मुक्तिकाजसोइकर्मकरि, कहेदेतहौंतोहिं ॥ १६ ॥

कर्म क्याहै और अकर्म क्याहै ऐसे इसविषयमें कविजन भी मोहितेभये सो कर्म मैं तुम्हारेको कहूँगा जिसको जानके संसारसे मुक्त होगे॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

दोहा-जान्योचहियेकर्महू, औरविकर्मस्वभाय ॥
सुनिअकर्मगतिलीजिये, गहनकर्मकेदाय ॥ १७ ॥

जिस वास्ते कि कर्म यानेकरनेयोग्य कर्म उसका रूपभी जानना चाहिये और विकर्म जिस एककर्ममें विविधप्रकारहैउसकारूपभी जानना चाहिये

और अकर्म जो निश्चयात्मकबुद्धिकरके केवल ईश्वराराधनार्थ निष्कामकर्म उसका भी रूपजानना चाहिये इसवास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्माणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

दोहा—कर्मनमाँझअकर्मजे, लखैअकर्मनिकर्म ॥
बुद्धिवंततिनसवकिये, मेटेमनकेभर्म ॥ १८ ॥

अब कर्म और अकर्मकास्वरूपजाननाकहतेहैं जो प्रारंभितकर्ममें अकर्म यानेआत्मज्ञान देखे यानेइस निष्कामकर्महीसे ज्ञानहोयगा इससेयहज्ञान-हीहै और जो मनुष्य अकर्म जो आत्मज्ञानउसमें कर्म याने यह कर्मसे-भया कर्मही है ऐसा देखनेवालामनुष्य मनुष्योंमें बुद्धिमान् है सो योगी और सोईसर्वकर्मोंका करने वालाहै ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥ १९ ॥

दोहा—जाकेसबआरंभनिज, विनाकामनाहोत ॥
पंडितत्याहिपंडितकहत, दहतकर्मकेगोत ॥ १९ ॥

जो कर्म प्रत्यक्षकर रहेहैं उसकी ज्ञानाकारता कैसी होगी सो कहते हैं सो ऐसी कि, जिसके सर्व लौकिक वैदिककर्मोंके आरंभ कामना संकल्प रहितहैं ज्ञानरूप अग्निकरके दग्धभये हैं बंधक कर्मजिसके उसको विद्वान्जन पंडित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

दोहा—कर्मफलनिछोडेसदा, तृप्तकरैनहिंआस ॥
ताकोकर्मनिकर्महूँ, लगैनभवकीफाँस ॥ २० ॥

जो कर्म फलका संबंध छोड़के निरंतर आत्मस्वरूपहीमें तृप्त नश्वर संसारके आश्रयरहित कर्ममें प्रवर्त्तभी है तोभी सो कुछ नहीं करताहै ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

दोहा-जीतेइंद्रियदेहनहिं, कामपरिग्रहजाहि ॥
देहकाजकर्मनिकरै, पापनलागतताहि ॥ २१ ॥

जो कर्मफलकी आशारहित चित्त और मन जिसका संयममेंहो जिसने परमात्म प्रीतिविना और सर्व उपासना त्यागीहोसो केवल शरीरसंबंधी कर्मको करताभया कर्मबंधनरूप पीडाको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

दोहा-यथालाभसंतोषजो, दुखसुखलखैनकोय ॥
सिद्धअसिद्धौएकसो, कर्मबंधनहिंहोय ॥ २२ ॥

जो आपही आय मिले इतनेही लाभसे संतुष्टहो और जो सुख दुःख लाभालाभ जयपराजय हर्षशोक इत्यादिक द्वंद्वों करके रहित होयँ मत्सर जो दूसरेका सुख न सहना उस करके रहित कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें सम बुद्धिसो कर्म करके भी नहीं बंधनपावै ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

दोहा-तजैसबैजोकामना, ज्ञानलगावैचित्त ॥
यज्ञकाजकर्मनिकरै, सोनबाँधियेमित्त ॥ २३ ॥

निवृत्तभयाहैआत्मानंदविनासंगजिसका और संसारवासनासे मुक्त है और आत्मज्ञानमें अवस्थितहै चित्त जिसका सो जो यज्ञकेअर्थ कर्म करे तो उसके बंधनकारक सर्व प्राचीनकर्म नाशहोते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

दोहा–होमअग्निहविब्रह्महै, अर्पब्रह्मनिजानि ॥
जायब्रह्ममेंसारहै, कर्मसमाधिहिठानि ॥ २४ ॥

निष्कामकर्मसे ज्ञानहोताहै इस भेदसे कर्मकीज्ञानाकरताकही अब परमात्माके अनुसंधानसे उसी निष्कामकर्मकी ज्ञानाकरताकहतेहैं सो ऐसे कि, जिसकरकेहव्यअर्पणकरते हैंवहस्रुवादिकवस्तुब्रह्महै याने ब्रह्महीका कार्य है घृतादिक हव्यभीब्रह्महीहै ब्रह्मरूपअग्निमें वह ब्रह्मरूप हव्य ब्रह्मरूप होताकरके होमाजाताहै ऐसेयहसर्वब्रह्मरूपहै तिसे ब्रह्मकर्मनियमकरके ब्रह्महीं प्राप्त होनेयोग्यहै ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

दोहा–देवनिकोइकयजतहैं, करतयज्ञबहुभाय ॥
एकब्रह्ममेंयजतहैं, ज्ञानयज्ञकेदाय ॥ २५ ॥

ऐसेकर्मयोगकीज्ञानाकारताकहकेअबकर्मयोगकेभेदकहतेहैं अपरे 'अकारोवैविष्णुः' इसश्रुतिप्रमाणसेजोविष्णुपरायणहैंवे योगी दैवं यज्ञ यानेप्रतिमापूजनरूपयज्ञ करतेहैं इनसेऔरभीऐसेहीयोगी ब्रह्मात्मकअग्निमें यज्ञसाधन सामग्रीकरके हवनात्मक यज्ञहीमें हवन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

दोहा–एकजेहोमतइंद्रियनि, संयमअग्निस्वरूप ॥
विषयनिहोमतएकहै, इंद्रियअग्निअनूप ॥ २६ ॥

और कितने योगी श्रोत्रादिक इंद्रियोंको संयमरूप अग्निमें होमतेहैं अर्थात् श्रोतादिकोंको हरिकीर्ति श्रवणादिकहीमें युक्त करतेहैं और कितें-

नेक शब्दादिक विषयोंको इंद्रिय रूप अग्निमें होमतेहैं याने हरिकीर्त्तन-विना और श्रवणादिक नहीं करतेहैं ॥ २६ ॥

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

दोहा--जेसबइंद्रिनकेकरम, औरकर्मसबप्रान ॥
होमतसंयमअग्निमें, प्रकटकरैचितज्ञान ॥ २७ ॥

और कितने योगी सर्व इंद्रियनके कर्मोंको और प्राणोंके कर्मोंको ज्ञान करके प्रदीप्त ऐसे मनके संयमरूप अग्निमें होमतेहैं. अर्थात् मन करके इंद्रिय प्राण कर्मवृत्तिनको संसार विषयसे निवारण करके आत्म ज्ञानमें लगानेका यत्न करतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥

दोहा--एकयजतहैंद्रव्यसों, एकतपस्यायोग ॥
एकजुपढिवेदहियजें, एकज्ञानसोंलोग ॥ २८ ॥

और कितने योगी द्रव्यसे यज्ञ करतेहैं. याने दानादिक करतेहैं. कितनेक उपवासादिक रूप यज्ञ करतेहैं. तैसेही और कितनेक पुण्य क्षेत्रादि वास रूप योग करतेहैं और कितने दृढव्रती यती याने यत्न शील व वेदाध्ययन वेदार्थविचाररूप यज्ञ करतेहैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

दोहा–होमअपानहिप्राणमें, प्राणअपानहिमाँह ॥
प्राणअपानहिरोकिके, रहतजुहैनरनाँह ॥ २९ ॥
प्राणनहीमेंप्राणको, होमततजिआहार ॥
एसबजानतयज्ञको, मेटतपापविकार ॥ ३० ॥
यज्ञशेषअमृतहिभखत, होतजुब्रह्ममेंलीन ॥
यहीलोकाविनयज्ञनाहिं, परलोकोहेछीन ॥ ३१ ॥

और कितनेक कर्मयोगी प्रमाणसे आहार करनेवाले जैसे कि, आधा-पेट अन्नसेभरै चौथाई जलसे और चौथाई वायुसंचार निमित्त खालीराखै ऐसे और प्राणायाम परायणहैं ऐसे योगी अपानमें प्राणको होमते हैं याने पूरक करतेहैं; ऐसेही कितनेक प्राणवायुमें अपानको होमतेहैं याने रेचक करतेहैं. ऐसेही और प्राण अपान दोनोंकी गतिको रोकके प्राणोंको प्राणनहीमें होमतेहैं याने कुंभक करतेहैं; इतनेये सर्वभी यज्ञके जाननेवाले यज्ञकरके पापरहित यज्ञहीका शेष अमृतरूप अन्नके खानेवाले सनातन ब्रह्मको प्राप्त होतेहैं. हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जो यज्ञ नहीं करताहै उसको यह लोकभी नहीं है और परलोकतो कैसे होयगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

दोहा–बहुतभाँतिवेदनकही, यज्ञसर्वएमानि ॥
तेसबजानहुकर्मते, लेहुमुक्तिसुखखानि ॥ ३२ ॥

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमें विस्तारसे कहेहैं उन सबको कर्मजजानों याने वे कर्महीसे होतेहैं, ऐसे जानिके कर्म करके मुक्तहोवोगे ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

दोहा-द्रव्ययज्ञतेहोतहैं, ज्ञानयज्ञइहभाय ॥
जितेकर्मवेदनिकहैं, ज्ञानहिरहितसमाय ॥ ३३ ॥

हे परंतप ! द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै, कारण कि, द्रव्ययज्ञकाभी फल ज्ञानहीहै हे पार्थ ! फलसहित सर्वकर्म ज्ञानमें समाप्त होताहै; याने इस ज्ञानहीकेवास्ते यज्ञ करतेहैं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

दोहा-कीजैबहुतेनरमता, प्रश्नरुसेवाभाँति ॥
तौज्ञानीउपदेशिहों, ज्ञानजिन्हेंदेशांति ॥ ३४ ॥

सो ज्ञान तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुमको उपदेशेंगे तुम उनकी सेवा करके और सत्कारपूर्वक नमस्कार करके उनसे प्रश्न करके जानो ॥ इहां श्रीकृष्णभगवान्ने केवल ज्ञानी जनोंकी प्रशंसा निमित्त यह वाक्य कहाहै और " अविनाशितुतद्विद्धि " इहांसे लेके " एषातेभिहितासांख्ये " इहां पर्यंत ज्ञान उपदेश तो करही चुकेहैं ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

दोहा-अर्जुनतूयाकोलहै, रहिहैब्रह्मसमाहिं ॥
सबजीवनिकोदेखिहै, आपमाँझकैमाहिं ॥ ३५ ॥

हे पांडुपुत्र ! जिसज्ञानकोजानिके ऐसे मोहको फिर नहीं प्राप्तहोगे. जिसज्ञानकरके सर्व भूतप्राणिमात्रको आपसदृश देखोगे. जैसे कि, प्रकृतिसे भिन्न ये परज्ञानाकारतासे सर्व समान हैं आप सदृश देखे पीछे फिर मेरे समान देखोगे याने ज्ञान प्राप्त भये जीव मेरी समताको प्राप्त होतेहैं सो आगे कहेंगे भी. "इदं ज्ञानमुपाश्रित्यमम साधर्म्य मागताः" ॥ इहां ब्रह्मसूत्र भी प्रमाणहै "भोगमात्र साम्यलिंगाच" ऐसेही श्रुति भी प्रमाण है

" तथा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमां शांतिमुपैति" ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे नाम रूप रहित याने सूक्ष्मा वस्थामें आत्मा और परमात्माकी स्वरूप समता निश्चय होती है ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

दोहा—सबपापिनमेंजोबडो, पापीतूहीहोय ॥
ज्ञानवानकरिचढिउतरि, पापसिंधुसमजोय ॥ ३६ ॥

जोकि, सर्व पापिनसे भी तुम बडे पापकारक होउगे तौभी इस ज्ञान रूपही नौका करके सर्व दुःख समुद्रको तरोगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

दोहा—जैसेज्वालहुताशकी, डारतिसबहीजारि ॥
ज्ञानअग्नित्योंप्रबलहै, एरितिकर्मतिवारि ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधनको समग्र भस्म करताहै तैसे विज्ञानरूप अग्नि सर्व कर्म बंधनको समग्र भस्म करताहै ॥ ३७ ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

दोहा—ज्ञानसदृशतिहुँलोकमें, पावननाहींऔर ॥
योगसाधनाजोकरै, लहैज्ञानकीठौर ॥ ३८ ॥

इस लोकमें निश्चय करके ज्ञान सदृश पवित्र नहीं है उस ज्ञानको कुछ काल कर्म करते करते कर्मयोगसे सिद्ध भया हुवा आपहीमें आपही प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

दोहा-इंद्रिजीत श्रद्धासहित, पावैऐसोज्ञान ॥
तापायेततकालही, पावेशांतिसुज्ञान ॥ ३९ ॥

ज्ञान प्राप्तिमें लगा भया इंद्रियोंको संयममें किये भये श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होताहै उस ज्ञानको पाइके थोडेही कालमें परम शांतिको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

दोहा-जोमूरखश्रद्धाविना, ताकोहोइविनाश ॥
जाकेहियसंदेहहै, सोदोउलोकनिराश ॥ ४० ॥

जो अज्ञानहै और ज्ञान प्राप्तिमें श्रद्धाको भी नहीं धारण किये हैं और मनमें संशय रखताहै सो नष्ट भ्रष्ट संसारमें भ्रमताहै जिसके मनमें संशयहै उसको यह लोक सुखदायक नहीं है परलोक भी नहीं है उसको कहीं भी सुख नहीं है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

दोहा-मोकोअरपैकर्मकरि, करिसंदेहीदूरि ॥
ज्ञानीबँधैनकर्मसों, रहैसदासुखपूरि ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! परमेश्वराराधन रूप जो निष्काम कर्म योग उस योग करके परमात्माके अर्पण किये हैं कर्म जिसने और ज्ञान करके संछिन्न भये हैं संशय जिसके ऐसे स्थिर चित्त ज्ञानीको कर्म नहीं बंधन करतेहैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यास-योगो नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—संदेहजुअज्ञानतैं, उपज्योअर्जुनआहि ॥
ज्ञानखड्गसोंकाटिकरि, दूरिकरोकिनताहि ॥ ४२ ॥
हरिवल्लभभाषाकह्यो, गीताभाषाभाय ॥
तामेंपूरणभयोसुख, करिचौथोअध्याय ॥

हे भरतवंशोत्पन्न अर्जुन ! तिससे जो अज्ञानसे उत्पन्न तुम्हारे हृदयमें- स्थित ऐसे इस आपके संशयको ज्ञानखड्गसे छेदनकरके उठो और कर्म- योगमें प्रवर्त्तहोउ याने क्षत्रियकाकर्म युद्धकरो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्थोऽध्यायप्रवाहः ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

दोहा—कबहुँकहतसंन्यासको, कबहुँकर्मकोयोग ॥
निश्चयकरिएकैकहो, मेटोकिनभवरोग ॥ १ ॥

श्रीकृष्णको अर्जुन पूँछते हैं कि, हे कृष्ण ! कर्मोंका संन्यास जो ज्ञान- योग उसको और फिर कर्मयोगको कहते हो इन दोनोंमें जो निश्चयकिया- भया श्रेष्ठहोय उसीको कहो. जैसे कि, दूसरे अध्यायमें कहा कि मुमुक्षुप्र- थम कर्म करके अंतःकरण शुद्धभये परज्ञान योग करके आत्मदर्शनका उपायकरे तीसरे चौथेमें ज्ञानीको भी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा, ऐसे दोनों कहतेहो जो इन दोनोंमें श्रेष्ठहो सोई कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥

दोहा—कर्मयोगसंन्यासअरु, एदोऊशुभदैन ॥
कर्मयोगसंन्यासमें, कर्मनलहियेचैन ॥ २ ॥

जब अर्जुनने प्रार्थना की तब श्रीकृष्ण भगवान् बोले सो ऐसे कि, संन्यास जो कर्मका त्याग और कर्म योग ये दोनों कल्याणकारक हैं. तिनमेंसे भी कर्मके त्यागसे कर्मयोग विशेष श्रेष्ठहै ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि नकांक्षति ॥
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा—द्वेषतजैंचाहहितजैं, सोसंन्यासीजानि ॥
रागद्वेषतेतोरहित, ताहिबव्योतूमानि ॥ ३ ॥

हे महाबाहो, जो न कोई वस्तुसे द्वेषकरै, न चाहनाकरै सो सुख दुःखादि द्वंद्वरहित नित्यसंन्यासी जानना वह सुखपूर्वक निश्चय बंधनसे मुक्त होता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ॥
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

दोहा—योगसांख्यकोद्वैकहत, मूरखपंडितनाहिं ॥
दोऊमेंएकैभजैं, दोऊफलहैताहि ॥ ४ ॥

जो मूर्ख हैं वे सांख्ययोगोंको याने ज्ञान कर्मोंको न्यारे कहते हैं पंडित नहीं कहते हैं. इन दोनोंमें से एकमेंभी अच्छी तरहसे स्थित रहाभया दोनोंके फलको पाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सपश्यति ॥५॥

दोहा—स्थानजलहियेसांख्यते, सोइयोगतेहोय ॥
सांख्ययोगएकैगनै, ताकोज्ञानीजोय ॥ ५ ॥

जो स्थान ज्ञानकरिके प्राप्तहोताहै सोई कर्मकारिकेभी प्राप्तहोताहै इससे ज्ञानको और कर्मको जो एक जानताहै सोजानता है यानेविद्वान् है ५

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

दोहा—लहसंन्यासहिदुःखसो, विनकर्मनरेमीत ॥
योगयुक्तिजेकरतुहैं, लहतब्रह्मनिश्चित ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! यहसंन्यास कर्मविना प्राप्तहोनेको दुर्गमहै याने होनेहीका-नहीं. जो कर्मयोग युक्त आत्मज्ञानमें मनलगाये है सो थोड़ेही कालमें ब्रह्मको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

दोहा—इंद्रियजितकैशुद्धही, योगयुक्तिजोकोय ॥
जीवनजानेआतमा, कर्मलिप्तसुनहोय ॥ ७ ॥

जो कर्मयोग युक्त है याने निष्काम कर्म करताहै और वाणीजिसकी शुद्ध है याने वाणीसे हरिकीर्त्तन करता है और मन शुद्ध है याने मनसे हरि स्मरण करता है और जितेंद्रियहै याने इंद्रियविषयको श्रेष्ठ नहीं जानता है और सर्व भूतप्राणीका आत्मा अंतर्यामिमें है आत्मा मन जिसका सो पुरुष कर्म करता भयाभी नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित् ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ८ ॥ ९ ॥

दोहा–ज्ञानीकर्मनिकरतहूं, लेइकियेनहिंमानि ॥
सूंघतदेखतछुवतपुनि, सुनतचलतहूंजानि ॥ ८ ॥
सोवतजागतचलतअरु, बोलतडरहूदेत ॥
इंद्रियविषयनमेंपगी, जानतुहैयहहेत ॥ ९ ॥

इंद्रियनके विषयोंमें इंद्रियां वर्त्तमान रहेती हैं ऐसे धारण करे भये तत्व ज्ञानी, कर्मभोगी देखतां, सुनतां, स्पर्शतां, सूंघंता, खातां, चलतां, सोतां, श्वासलेता, बोलता, छोड़ता, पकरतां, नेत्रखोलता, मीचता भयोभी मैं कुछं भी नहीं करताहों ऐसे मानेताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

दोहा–कर्मकरैतजिसंगको, सबको ब्रह्महिमानि ॥
ताकोपापनलगतुहै, पद्मपत्रजलजानि ॥ १० ॥

जो शरीरमें यानें शरीरस्थ इंद्रियनमें कर्मोकोधारणकरके याने कर्म करने वाली इंद्रियां हैं ऐसे जानिके कर्म फलासक्तिको त्यागिके कर्म करतां हैं सोपापकरके नहीं लिप्त होता है, जल करके कमल पत्र सरीखा ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

दोहा–देहबुद्धिमनइंद्रियनि, योगीह्वैनिस्संग ॥
कर्मकरतअतिचायसों, चित्तशुद्धकेढंग ॥ ११ ॥

जो योगी हैं वे फलसंग त्यागिकें आत्मशुद्धिकेलिये याने आत्मगत प्राचीन कर्म बंधन छूटनेकें वास्ते शरीरकरके, मनकरके, बुद्धिकरके, केवल इंद्रियोंकरकेभी कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तः कामकारेण फलेसक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

दोहा—ज्ञानीहूँमुक्तहिलहै, कर्मकरैफलछाँडि ॥
पुष्पफलनकीआशकरि, बाँधिकामनाआँडि ॥ १२ ॥

युक्तयाने आत्मज्ञानयोगयुक्तपुरुषं कर्मफलको त्यागि के ईश्वरनिष्ठ शांतिको प्राप्तहोताहै जो आत्मज्ञानयोगरहितहै सो यथेष्टकरणकरके फलविषेआसक्तभया ऐसा जो जीव सो बंद्धहोय ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

दोहा—मनकरिकर्मनिजेतजत, ज्ञानीतिनकोमानि ॥
नवद्वारपुरमैंवसत, लेतसुखनकीखानि ॥ १३ ॥

वशीयाने जिसकाचित्तवशहै ऐसादेहीदेहधारिजीवसो नवद्वारका पुरजो देहतिसमें मनसे कर्मोको स्थापितकरके नँ करता नँ कराताभया सुखजैसे होय तैसे ही रहता है ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

दोहा—ईश्वरनहिंकर्मनिकरत, नहिंकर्मनिकरतार ॥
कर्मफलनिहूँनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार ॥ १४ ॥

प्रभुयाने अविनाशी आत्मा लोकजोदेवादिकशरीरतिसका नँ कर्त्तापन नँ कर्म नँ कर्मफलकेसंयोगको सिरजताहै क्योंकि, यहस्वभावयानेअनादिकालप्रकृतिसंसर्गकीवासना प्रवर्त्त है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैवं सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

दोहा–सुकृतिनकाहूकोगहै, औरपापनहिंलेय ॥
ढाँप्योज्ञानअज्ञानतै, मोहुँनप्रगटनदेय ॥ १५ ॥

जैसेकि, कर्तृत्वऔरकर्मोंकोनहींउत्पन्नकरताहैइसीसेयहजीवात्मा किसी-शरीरसंबंधी पापकोभी नहींग्रहणकरता है औरसुकृतकोभी नहीं ग्रहणकरता है क्योंकि जिनकाज्ञान अज्ञानकरके ढकरहाहै उस करके वेजीव मोहकोप्राप्तहोते हैं यानेअज्ञानकरकेदेहादिकमें आसक्ति और उससे दुःख होताहै ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

दोहा–दूरिकियेअज्ञानजिनि, हियेज्ञानप्रकटाय ॥
देखतईशस्वरूपते, ज्ञानसूरकेदाय ॥ १६ ॥

जिनका आत्मसंबंधी ज्ञानकरके वह अज्ञान नष्टभयाहै उनका वह श्रेष्ठ ज्ञान सूर्यसदृश प्रकाशकरताहै याने वे संसारदुःखरहितमुक्तहैं ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

दोहा–जेमनकोअरुबुद्धिको, राखतईश्वरमाँह ॥
जन्ममरणतिनकोनहीं, मुक्तिहोतनरनाँह ॥ १७ ॥

उसआत्मज्ञानहीमेंहैबुद्धिजिनकी उसीमेंहैमनजिनकाउसीमेंहैनिष्ठाजि-नकी और वहीहै श्रेष्ठस्थानजिनका इसतरहसेज्ञानकरकेनष्टभयेहैंमनकेविका-रजिनके वेपुरुष मुक्तिको पावतेहैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

दोहा–विद्याविनयलियेजुद्विज, गोगजश्वपचौश्वान ॥
ज्ञानीइनकोसमगनत, भेदलेतनहिंमान ॥ १८ ॥

विद्या और विनय युक्त ब्राह्मणमें, गऊमें हाथीमें और कुत्तेमें और चांडालमें भी पंडितजन समदर्शी होते हैं याने आत्माको आप सदृश जानते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९

दोहा–समताजिनकेहीयमें, तिनजीत्योसंसार ॥
समताब्रह्माकोकहत, ब्रह्मलीननिरधार ॥ १९ ॥

जिनका मन ऐसी समतामें स्थित है उन्होंने इहां ही संसार जीता है. जिस वास्ते कि, ब्रह्म निर्दोष सर्वत्र समानहै तिसीसे वे ब्रह्मप्राप्ति निमित्त स्थितहैं ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

दोहा–सुखपायेहरषैनहीं, दुखपायेनरिसाय ॥
राखैथिरनिजबुद्धिको, ब्रह्महिरहैसमाय ॥ २० ॥

प्रिय वस्तुको पायके हर्षना नहीं और अप्रियको पायके व्याकुल न होना; ऐसा स्थिरबुद्धि, विचारशील ब्रह्मकाज्ञाता ब्रह्म प्राप्ति निमित्त स्थितहै ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

दोहा–बाहरकेसुखकोतजै, हियसुखरहैजुजानि ॥
ब्रह्मविषेचितकोधरत, लेहिजुआनँदमानि ॥ २१ ॥

जो शब्दादिक विषयोंमें अनासक्त भया हुआ जो आत्मामें सुखको पावताहै सो ब्रह्म प्राप्ति उपाय चित्तवाला पुरुष अक्षय सुखको पावैता है याने मोक्षपाताहै ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

दोहा–विषयतजैसंसारके, ते हैंदुखकोमूल ॥
उपजतविनशतहैंतिन्हैं, पंडितगहैनभूल ॥ २२ ॥

हे कुंतीपुत्र ! जे शब्दस्पर्शादिक भोगहैं वे दुःखके कारण आद्यंतवंत याने होते जाते रहते हैं अर्थात् अल्पसुख हैं इस निश्चयसे उनमें पंडितजन नहीं रमते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

दोहा–कामक्रोधकेवेगको, जोसहिसकैस्वभाय ॥
तेयोगीनितहीरहैं, थिरसुखमेंलपटाय ॥ २३ ॥

जो मनुष्य कामक्रोधके वेगको शरीरसे निकसनेके प्रथमे उसवेगको सहनेको सकताहै सो योगी है सो मनुष्य इसी लोकमें सुखी है२३

योंतःसुखोऽतरारामस्तथांतज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

दोहा–जाकेहियपरकाशहै, अंतरसुखआराम ॥
वहयोगीपरब्रह्महै, लहैब्रह्मकोधाम ॥ २४ ॥

जो आत्माहीमें सुखी और आत्माहीमें है विश्राम जिनको तैसे ही जो अंतर्ज्योति याने आत्मज्ञान ही करके प्रकाशितहै सोई योगी ब्रह्मप्राप्ति उपाय तत्पर ब्रह्मवत् मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ॥ २५ ॥

दोहा–जोज्ञानीपापनितजत, होतब्रह्ममेंलीन ॥
भेदनतिनकेजीयमें, रहतसबनिसोदीन ॥ २५ ॥

जिनके लाभअलाभ सुख दुःखादिक दो दो उपद्रव नष्ट भये हैं जिनका मन ईश्वरमें लगाहै और सर्वभूत प्राणिमात्रके हितमें रहतेहैं इससे उनके पापक्षीण भयेहैं ऐसे ऋषीजन ब्रह्मसमान मुक्तिको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

दोहा–कामक्रोधतेजेरहित, वशकीनोनिजचित्त ॥
ज्ञानवंतजेहैंसदा, ब्रह्मचहूँदिशिमित्त ॥ २६ ॥

जो कामक्रोधरहित हैं और ईश्वरप्राप्तिके यत्न करने वाले हैं और चित्त जिनके वशहैं ऐसे आत्म ज्ञानिनको सर्वप्रकारसे ब्रह्मसुख वर्त्तमान हो रहाहै ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

दोहा–तजैविषयसंसारमें, दृष्टिभौंहमधिराषि ॥
प्राणअपानहिसमकरै, नासामधिअभिलाषि ॥ २७ ॥

जीतेइंद्रियबुद्धिमन, मुक्तिहिमेंमनदेय ॥
इच्छा भयक्रोधहितजै, मुक्तिपदारथलेय ॥ २८ ॥

बाह्य इंद्रियोंके स्पर्श जो शब्दादिक विषय तिनको बाहेर याने त्याग करके फिर भौहोंके मध्यमें दृष्टिको करके नासिकाके भीतरही संचारकरै ऐसे प्राणापानोंको सम करके जो मुनि याने मननशील पुरुष इंद्रिय मन और बुद्धिको वशकरै मोक्षहीमें आसक्त इच्छा, भय और क्रोध करके रहित होइ सो सदामुक्तही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो-नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–तपयज्ञनको भोगता, सबलोकनिकेईश ॥
शांतिलहैयोंजानिकै, मोकोप्रभुजगदीश ॥ २९ ॥

अब औरभी अति सुगम मुक्तिका उपाय कहते हैं. सर्वयज्ञ और तपों-का भोक्ता सर्वलोकोंका महेश्वर याने लोकेश्वरोंकाभी ईश्वर सर्वभूतप्राणि-नका सुहृद् ऐसा मेरेको जानिकेभी मुक्तिको प्राप्त होतेहै ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां पंचमाध्यायप्रवाहः ॥ ५ ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

दोहा–कर्मफलनिचाहैनहीं, करैंकर्मनिहकाम ॥
योगीसंन्यासीवही, पावतुहैसुखधाम ॥ १ ॥

कर्मयोग कहिके अब ज्ञानकर्म साध्य आत्मदर्शनरूप योगाभ्यास कहते हैं. तहां कर्म योगकी अपेक्षा रहित योगसाधनत्व दृढ करनेको ज्ञानाकार कर्मयोगको योग शिरोमणि कहते हैं सो ऐसे कि, जो कर्मफलको न चाहताभया स्ववर्णाश्रमोचित करने योग्य कर्मको करता है सो संन्यासी है और योगी है. जिसने अग्निकर्मको त्यागा है सो संन्यासी और योगी नहींहै और जिसने क्रियाकर्मको त्यागाहै सोभी संन्यासी योगी नहींहै ॥ १ ॥

" यहां एक श्रीकृष्णकाअभिप्राय औरभी दीखताहै कि, कलियुगमें संन्यासका निर्वाह होगानहीं. क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चंचल होगी. सो देखनेमेंभी आता है कि, जो घर छोडते हैं तौ संन्यासी ह्वैके मठ बाँधिके व्यापार करते हैं. जो स्त्रीविवाहित नहीं तौ परस्त्रीगमन करते हैं. पुत्रोंकी जगह शिष्य करते हैं; ऐसेही औरभी सामान्यगृस्थोंसे अधिक रखके केवल प्रपंचरत होते हैं इससे श्रीकृष्णने निष्कामकर्म कर्त्ताहीको संन्यासी योगी कहा है और अग्निकर्म तथा क्रियात्यागनेका निषेध किया है" ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

दोहा—जाकोसंन्यासीकहै, वहयोगीतूजानि ॥
विनुसंन्यासहिंयोगनहिं, यहैसाँचतूमानि ॥ २ ॥

अब कहेभये कर्मयोगमें ज्ञानभी दिखातेहैं. हेपांडुपुत्र ! जिसको संन्यास कहतेहैं उसको अभेदकरके योग जानो जिसवास्ते कि, कर्मफल संकल्पत्यागेविना कोईभी योगी नहीं होताहै. अर्थात् कर्मफलको ईश्वरार्पण कियेविना योगी संन्यासी होता नहीं. जो कर्मफलको ईश्वरार्पण करताहै वही योगी और संन्यासीहै ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा–योगहिकर्मनितेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥
योगलहैसांतहिगहै, विषयइंद्रियनिमारि ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानकी प्राप्ति चाहनेवाले मननशीलको ज्ञानप्राप्तिकारणं कर्म कहाहै उसी ज्ञानप्राप्तभयेको मुक्तिकारण संकल्पविकल्पत्यागपूर्वक कर्महीं कहाहै ॥ ३ ॥

यदाहि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

दोहा–विषयनिसोंअरुकर्मसों, होइप्रीतिजबदूरि ॥
सबसंकल्पनिकोतजै, योगरहैभरपूरि ॥ ४ ॥

जब, न इंद्रियोंके विषयनमें न कर्मोंमें आसक्तहोय तब सर्वसंकल्पोंका त्यागी योगारूढ कहाताहै इससे कर्मकरना अवश्य है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

दोहा–निजआत्माकोउद्धरत, अधोगमननहिंदेय ॥
आतमहीरिपुआपको, आतमहीसुखदेय ॥ ५ ॥

ऐसे आपके वश मनकरके आपका उद्धार करना, आपका अवसाद याने घात याने अधोगति नकरना. कारण कि, आपका मनही आपका मित्रहै और वह मनही आपका शत्रुहै ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

दोहा–आपुहिजीतै आपुको, सोईबंधुजुयाहि ॥
जिनजीत्योहैआतमा, अरिह्वैवर्त्ततताहि ॥ ६ ॥

जिसने बुद्धिकरके निश्चय मनं जीताहै उसं जीवात्माका मनं मित्रहै औरं जिसने मन नहीं जीताहै उसका मंन शत्रुत्वमें शत्रुसरीखो होताहै ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

दोहा–जिनजीत्योहैआतमा, शांतिलहैबहुज्ञान ॥
शीतउष्णसुखदुखजुसम, अपमानाजूमान ॥ ७ ॥

शीत उष्ण सुख औरं दुःखमें तैसे ही मान अपमानोंमें जीता है मन जिसने ऐसे शांतकी बुद्धि अतिशय परिपूर्ण रहती है ॥ ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

दोहा–जानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रियजितहोय ॥
सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

ज्ञान जो आत्मज्ञान विज्ञान जो विशेषज्ञान याने अनात्म आत्मविवेक इन करके जिसका मन तृप्त होयं कूटस्थं याने सर्व शरीरोंमें आत्माको समान जानिके निर्विकार इसीसे जितेंद्रियत्वसे जो ठीकरी पत्थर और सोना इनको सम जान रहा है ऐसा योगी युक्त याने आत्मदर्शनयोगयुक्त कहाताहै ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

दोहा–मित्रउदासीशत्रुपुनि, अरुनिजबंधुसमान ॥
साधोपापीचित्तमैं, गनैयेकछुउनमान ॥ ९ ॥

सुहृद् जो प्रत्युपकारविना हितकारक मित्र परस्पर उपकारी अरि शत्रु उदासीन जो प्रीति वैर रहित मध्यस्थ जो सर्वकाल प्रीति वैर समान द्वेष्य जो सदा ईर्षा करता होय सो जो सदाहितेच्छु सो बंधु जो धर्म शील सो साधु और जो पापशील सो पापी इन सवोंमें भी जो समबुद्धि होयँ सो श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

दोहा–बैठिइकैसेइकचितै, योगीसाधैयोग ॥
एकाकीचाहनकछू, जोरैंनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

एकहीं बैठा स्ववश चित्तमनवाला सांसारिक आशारहित आत्मा विना परिग्रहरहित ऐसा योगी एकांतम बैठाभया मनको निरंतर परमात्मामें लगातारहै ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

दोहा–ठौरपुनीतनिहारिकै, करिआसनविस्तार ॥
नहिंऊँचौनीचौनहीं, पटकुशअजनविथार ॥ ११ ॥
करिबैठैमनकोजुथिर, सबइंद्रियनकोजीति ॥
करिकैआतमशुद्धको, योगकरैइहिरीति ॥ १२ ॥

अब योगाभ्यासमें आसन नियम कहतेहैं जैसे कि, पवित्रस्थानमें न अति ऊंचा न अतिनीचा कुशासनपर मृगचर्मादिक उसे पर वस्त्र ऐसा

और थिर आपकी आसन बिछाईके उस आसनपर बैठिके मनको एकाग्रकरके चित्त और इंद्रियोंके कर्म स्ववशकिये भया अपना बंधन छुटनेके वास्ते योगको करै ॥ ११ ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनःसंयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

दोहा—कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥
डीठिधरै निजनासिका, पेखैनहिंदिशिआन ॥ १३ ॥
शांतिगहैभवकोतजै, ब्रह्मचर्य्यव्रतलेय ॥
मोमेंराखैरोकिमन, लहैयोगकोभेय ॥ १४ ॥

अब बैठनेका नेम कहतेहैं--काया जो मध्यशरीर शिर और ग्रीवा इनको अचल थिर और सम राखे भये आपके नासिकाग्रको देखिके और और ओर नदेखताभया प्रशांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित मेरेमें चित्तलगाये भये मनको नियमितकरके आत्मनिष्ठ पुरुष मेरेमें लीनभयाहुआ बैठारहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

दोहा—यहिविधिकरैजुयोगको, निजमनकोथिरराखि ॥
शांतिलहैमोकोमिलै, रहैअमीरसचाखि ॥ १५ ॥

ऐसे नियममें मनहै जिसका ऐसा योगी ऐसेही सर्वकालमें मनको मेरेमें लगाताभया आनंदहै परमजिसमें ऐसी मेरेसदृश शांतिको पावताहै ॥ १५॥

नात्यश्नतस्तुयोगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

दोहा-योगलहैनंहिंबहुसखे, विनभाषेतूमित्त ॥
सोवतहूंसोवैनहीं, अतिजागतहूंमित्त ॥ १६ ॥

अब योगीके आहारादिकोंका नियम कहते हैं-जैसे कि, हे अर्जुन ! जो अतिभोजन करता है उसका योग नहीं सिद्धहोता है और जो कुछभी भोजन नकरै उसकाभी योग नहीं सिद्धहोताहै और अतिसोनेवालेका योग नहीं सिद्धहोताहै; अतिजागनेवालेका भी योग नहीं सिद्धहोताहै ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

दोहा-युक्तअहारविहारजो, कर्मयुक्तपुनिहोय ॥
जागतसोवतजोजुगत, सोडारतदुखधोय ॥ १७ ॥

जो आहार और स्त्रीप्रसंगप्रमाणमें करैगा " आहारका प्रमाण यह कि, आधापेट अन्नसे और चौथाई जलसे भरके चौथाई पवनसंचारके वास्ते खाली राखै, स्त्रीप्रसंगप्रमाण यह कि, अतिकामकी इच्छा होनेसे स्त्रीसंग करै, जो कोई यहां शंका करै कि, योगीको तो ब्रह्मचर्य कहि आये हैं; जैसे कि, इसी अध्यायके चौदहवें श्लोकमें कहाहै सो सत्य है; परंतु " ऋतौभार्यामुपेयात् " इस श्रुतिप्रमाणसे ऋतुसमयमें स्त्रीप्रसंग करनेमेंभी एक ब्रह्मचर्य है; औरभी कहाहै कि, " इंद्रियाणींद्रियार्थेषुवर्त्तंतइतिधारयन् ॥ कर्मेंद्रियाणि-मनसानियम्यारभतेऽर्जुन " इत्यादि तथा कहेंगे कि, " अथवायोगिनामेव-कुले भवतिधीमताम् " तौ जो योगी स्त्री प्रसंग नकरैगा तो उसके कुलमें जन्म कैसे होगा ? इत्यादि प्रमाणोंसे योगी स्त्रीप्रसंग प्रमाणसे करै यह विहा-रशब्दका अर्थ सिद्धहै ऐसेही--कर्ममेंभी चेष्टा प्रमाणहीसे करै अति परिश्रम नकरना यहाँ भागवतका प्रमाणदेते हैं " सिद्धेऽन्यथार्थेनयतेततत्रपरिश्रमंतत्र-समीक्षमाणः " ऐसा द्वितीयस्कंधके दूसरे अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहाहै

ऐसेही जो प्रमाणसे सोवै और प्रमाणहीसे जागै उसका दुःखनाशक योग सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहःसर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

दोहा–जोनिजचितकोरोकिकै, राखैआतममाहिं ॥
तजैसबैजोकामना, सोयोगीनरनाहिं ॥ १८ ॥

जब आत्माहीमें अतिनिश्चल चित्त लगरहताहै तब सर्वकामनाओंसे निःस्पृहहुआभया वह पुरुष युक्त ऐसा कहाताहै ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

दोहा–जैसेदीपसमीरबिनु, रहैज्योतिठहराय ॥
योगीनिश्चलचित्तको, उपमाहैयहभाय ॥ १९ ॥

जैसे निवातस्थानमें धराभया दीपक नहीं हालता तथा डोलता है तैसेही वशहै चित्त जिसका ऐसे योगके करनेवाले योगीके मनकी जो उपमा सोई कही है ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

दोहा–योगीसेवतयोगको, चित्तजहाँठहराय ॥
निरखतआतमकोतहाँ, रहतसदासुखपाय ॥ २० ॥

योगसेवन करके विषयोंसे रोकाभया चित्त जहां विश्रामको प्राप्त होता है और जहां बुद्धिकरके आत्मस्वरूपको निश्चय करता भया मन हीमें संतुष्ट होय ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥ २१ ॥

दोहा--जोसुखइंद्रिनतेपरे, वहुतबुद्धिगहिलेत ॥
वासुखकोजानैतवै, तापाछेइहनेत ॥ २१ ॥

जो इंद्रियोंके जाननेमें न आवे बुद्धिकरके ग्रहणकरनेमें आवै ऐसा अत्यंत सुख उसको जिसयोगमें स्थितभया हुआ यह पुरुष जने है ऐसा निश्चय और फिर आत्मस्वरूपसे न चलायमान होय ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

दोहा--जोपायेलाभनअधिक, औरजानिरेमित्त ॥
स्थिरतागहिडोलैनहीं, वहुदुखपायेचित्त ॥ २२ ॥

जिसको पायके फिर उससे अधिक श्रेष्ठ लाभ नहीं मानताहै जिसमें प्रवर्त्त भारीभी दुःखकरके नहीं घबराता है ॥ २२ ॥

तं विद्यादुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
सनिश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

दोहा--दुखहूकेसंयोगको, मानजुलेतवियोग ॥
निश्चयकरियोगहिकहैं, ताकोकहतजुयोग ॥ २३ ॥

उसको दुःखसंयोग वियोगकारक योगनामक जानना सो योग निर्विकल्प चित्तसे निश्चयकरके करनेही योग्यहै ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्॥२५॥

दोहा–संकलपनिजोकामना, तिन्हैंतजैचितचाय ॥
मनसोंरोकैइंद्रियनि, योगकरैयाभाय ॥ २४ ॥
धीरजधरिअरुबुद्धिकरि, हरैहरैसबत्यागि ॥
कछुवैकरैनकामना, आतमसोअनुरागि ॥ २५ ॥

स्पर्शजन्य और संकल्पज ऐसे भेदसे कामना दो प्रकारकी है, तिनमें स्पर्शज शीतउष्णादिक, संकल्पज पुत्रवित्तादिक इनमें स्पर्शजका त्याग स्वरूपसे नहीं हो सकता इससे संकल्पज सर्व कामनाओंको समग्रतासे मनहीसे त्यागिके सर्व इंद्रियोंको सर्वत्रसे नियमित करके विवेकशुद्ध बुद्धि करके धीरे धीरे विश्रामको प्राप्त होना फिर मनको आत्मस्वरूपमें स्थिर करके आत्मस्वरूपविना किसीकाभी न चिंतवनकरना ॥ २४ ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

दोहा–मनचंचलजिततितचलै, ताकोराखैरोकि ॥
करिसंयमनिजआतमा, सजैजुताकोठोकि ॥ २६ ॥

यह मन चंचलहै इसीसे आत्मस्वरूपमें थिर नहीं रहताहै. सो यह मन जहां जहां लगै तहांतहांसे इसको फिरायके आत्मस्वरूपहीमें लगाना ॥ २६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

दोहा–जाकेमनमेंशांतिहै, पापरहितजोहोय ॥
मगनजुब्रह्मानंदमें, तायोगीकोहोय ॥ २७ ॥

कारणं कि, जिसका मन आत्मस्वरूपमें स्थिर है उसीसे उसका रजोगुणभी नष्टभयाहै, उससे वह निष्पाप है, उससे वह आपके स्वरूपमें स्थिरहै ऐसे इस योगीको उत्तम याने आत्मानुभवरूप सुखं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

दोहा—जोयोगीइहविधिकरै, योगपापकोत्यागि ॥
सहजहिब्रह्महिकेसुखहिं, लहैरहतअनुरागि ॥ २८ ॥

ऐसे निष्पाप योगी इसीतरहै सर्वदा मनको स्वरूपज्ञानमें युक्त करता-करता ब्रह्मानुभवरूप अत्यंतसुखको सुखसे पावताहै ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

दोहा—मोहिलखैसबठौरजो, सबकोमोहीमाहिं ॥
मोकोदेखतसोसदा, हौंहूंदेखततांहिं ॥ २९ ॥

सर्वत्र शत्रुमित्रादिकोंमें समदृष्टि योग जो " द्वासुपर्णासयुजौसखाया " इस श्रुतिप्रमाणसे सखित्वरूप संयोग उसमें लगायाहै मन जिसने सो आपरूपको आकाशादि सर्वभूतोंमें स्थित और उनका आकाशादि सर्वभूतोंको आपमें देखताहै ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

दोहा—व्यापकहौंसबजीवमें, मोकोसेवैकोय ॥
कैसेहूंकितहूंरहौं, ताकोमोमेंजोय ॥ ३० ॥

ऐसे जो मेरेको सर्वत्र मालाके मणिकोंमें सूत्रकीतरह देखताहै और

सर्वजगत् सूत्रमें मणिकोंकीतरह मेरेमें देखताहै मैं उसके अदृश्य नहीं होताहूँ और वह मेरे नहीं अदृश्य है ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

दोहा–सर्वविषेअस्थितजुहों, इकलखिभजैजुमोहिं ॥
रहौंकौनहूँभाँतिवह, मोमेंवर्त्ततुजोहिं ॥ ३१ ॥

जो एकत्व याने सर्वसे मित्रभाव, (एकत्वका अर्थ जो स्वरूपकी एकताकरै तौ भजन किसका करै ? इससे मित्रताही अर्थहै. वाल्मीकीयसुंदरकांडमें भी " रामसुग्रीवयोरैक्यंदेव्येवंसमजायत " इस हनुमानके वाक्य करके एकताका अर्थ मित्रताही सिद्ध होताहै इससे) जो सर्वकी मित्रतामें रहाभया सर्वभूतोंमें व्यापक मेरेको भजताहै निश्चय सो योगी सर्व आचरण करताभया मेरेमें वर्त्तमान है याने मेरे हृदयमें वसता रहताहै ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

दोहा–सबकोदेखतआपसम, दुखसुखएकैभाय ॥
सोयोगीसबतेबड़ो, मोमेंरहैसमाय ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो सुख अथवा दुःखको आपके समत्व करके सर्वत्र समान देखता है सो योगी उत्तमहै. यह श्लोक उनतिसवें श्लोकका खुलासा करने वालाहै ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच ।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ३३

दोहा-योगकह्योतुमकृष्णजू, मोकोएकसमान ॥
रहैनमोचितचंचलहि, जोतुमकियोवखान ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुन बोलते भये कि, हे मधुसूदन ! जो यह योग समताकरके तुमने कहा सो मनके चंचलत्वसे मैं इसकी स्थिर स्थिति नहीं देखताहौं ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

दोहा-मनहैचंचलकृष्णजू, बहुक्षोभकदृढजानि ॥
ताकोरोकनपवनसम, है अतिकठिनजुमानि ॥ ३४ ॥

हे कृष्ण ! जिससे कि यह मन चंचल इंद्रियोंका क्षोभक दृढ बली है मैं इसका रोकना पवनका रोकना जैसा दुष्कर मानताहौं ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

दोहा-अर्जुनतुमसाँचीकही, मनचंचलनसहाय ॥
योगकियेवैरागसों, नोकेपकरोजाय ॥ ३५ ॥

ऐसासुन श्रीकृष्णभगवान् बोले कि; हे महाबाहो ! यह मन चंचल है इसीसे रोकनेमें आना कठिनहै. यहां संशय नहीं तो भी हे कुंतीपुत्र ! अभ्यास करके और वैराग्य करके रोकनेमें आताहै ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

दोहा--जिनपकरयोनहिंचित्तनिजु, तापैयोगनहोय ॥
जिनअपनोमनवशकियो, लहतजगतसोसोय ॥ ३६ ॥

यह योग जिसने मन वश न किया उसकरके प्राप्त होनेका नहीं ऐसी मेरी मति है और जिनने मनको वश किया है उसकरके यत्न करते करते उपायसें प्राप्ति होनेको सकताहै ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ॥
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

दोहा--अयतीअरुश्रद्धासहित, योगभ्रष्टतापाय ॥
लहैनसिद्धसुयोगकी, कौनगतिहिकोजाय ॥ ३७ ॥

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायोनविद्यते" इत्यादि वाक्यों करके योगमाहात्म्य सुनाथा तौभी विशेषज्ञानके वास्ते फिर पूंछतेहैं-जैसे कि, हे कृष्ण! जो श्रद्धाकरके युक्त और यत्न न करसकों इससे योगसे मन चलायमान भया इससे योग सिद्धिको नपायके किस गतिको जाता है॥ ३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

दोहा-किधौंदुहुनितेभ्रष्टहै, बादललौंविनशाय ॥
ताकोकछूनआसरो, रह्योंमूढ़केभाय ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो! वेदके मार्गमें भूलाभया याने स्वर्गादि प्राप्तिनिमित्त कर्म त्यागके निष्कामकर्मरूप योगकोभी न प्राप्तभया इसीसे वह अप्रतिष्ठित और उभयभ्रष्ट याने स्वर्गादिप्राप्तिकारक कर्मभी छोड़ा और योगभी न मिला इसीसे कदाचित् छिन्नाभ्रकी तरह जैसे बड़े मेघमेंसे निकसिके मेघका टुकड़ा दूसरे मेघको न प्राप्तहोके बीचहीमें नष्ट होताहै तैसे न नष्टहोई॥ ३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

दोहा-मेरेयासंदेहको, करोदूरिजगदीस ॥
मेटोयासंदेहको, कौनकरैतुवरीस ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! इस मेरे संशयको अच्छी तरहसे छेदन करनेको योग्यहो क्योंकि, ईस संशयका छेदनेवाला तुमबिन दूसरा नहीं मिलेगा ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैव वेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥४०॥

दोहा-अर्जुनदोऊलोकमें, ताकोहोयननास ॥
भलेकर्मजोकरतहै, तिनकोअघनहिंवास ॥ ४० ॥

अर्जुनके वाक्य सुनिके कृष्ण बोले कि, हे पार्थ ! उस योगीका नाश न इसलोकमें ही न परलोकमें होता है; क्योंकि, हे तात ! शुभकर्त्ता कोई भी दुर्गतिको नहीं पावता है ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

दोहा-पुण्यवंतकेलोकलहि, रहितबहुतदिनजाय ॥
योगभ्रष्टधनवंतशुचि, तिनघरजनमैंआय ॥ ४१ ॥

जो योग पूराभयेविना मरजाय तो भी वह योगभ्रष्ट पुण्यकरने वालोंके लोकोंको प्राप्तहोके वहां अनेकवर्ष रहिके पवित्र और धनवालोंके घरमें जन्मता है ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

दोहा—बुद्धिवंतयोगीकुलनि, आयलेयअवतार ॥
जन्मलहतऐसेवरनि, होतनवारंवार ॥ ४२ ॥

अथवा बुद्धिमान् योगिनके कुलमें ही जन्मता है, जो ऐसा यह जन्म सो इस लोकमें निश्चय दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

दोहा—तिनहूंपहिलीदेहको, लहतबुद्धिसंयोग ॥
यतनकरतहैसिद्धिको, बहुविधिसाधैयोग ॥ ४३ ॥

हे कुरुनंदन ! वहां जन्मलेके वैही पूर्वदेहेंसंबंधी बुद्धिसंयोगको पावता है और उसपीछे फिरभी उस सिद्धिनिमित्त यत्नकरता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

दोहा—सोतोअपनेवशनहीं, सोपहिलोअभ्यास ॥
तातेउपजैयोगको, ब्रह्मशब्दमें वास ॥ ४४ ॥

जो न करना चाहे इंद्रियजित न होय तो भी वह पुरुष उसी पूर्वाभ्यासकरके उसीको प्राप्त होता है. क्योंकि, जो योगके जाननेकी भी इच्छा करे तोभी शब्दब्रह्म याने देवादिनाम शब्दयुक्त जो प्रकृति उसको उल्लंघन करजाताहै याने मुक्त होता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

दोहा–योगीजोजतनानिकरैं, डारैंअघनितधोय ॥
बहुतजन्मसिद्धहिलहै, ताहिपरमगतिहोय ॥ ४५ ॥

ऐसे प्रयत्नसे योग करता करता निष्पाप भयाहुआ योगी अनेक जन्मों-करके सिद्धभया तब निश्चय मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

दोहा–तपसिउतेयोगीअधिक, ज्ञानीहूतेजानि ॥
कर्मनिहूतेहैअधिक, अर्जुनयोगहिमानि ॥ ४६ ॥

हे अर्जुन ! योगी जो निष्काम कर्म कर्त्ता सो सकामिक तपस्विनसे अधिक मानाहै, ज्ञानिनसे भी अधिक है और सकाम कर्म करनेवालोंसेभी योगी अधिक है; तिससे तुम योगी हो याने निष्काम होके स्वधर्मरूप क्षत्रियकर्म युद्ध करो ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अभ्यास-योगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–जोयोगीराखैमनहिं, मोमेंनिश्चलभाय ॥
श्रद्धायुतमोकोंभजै, सोसबतेअधिकाय ॥ ४७ ॥
कर्मज्ञानव्रतयोगते, भक्तिसबनिशिरमौर ॥
तिनअर्जुनहोवशिकियो, मोबिनछिननहिंऔर ॥ ४८ ॥

हरिवल्लभआपारच्यो, मनहूँराखतठौर ॥
छठयेंअध्यायाहिकह्यो, यहीयोगनिजमौर ॥ ४९ ॥

जो श्रद्धावान् पुरुष मेरेमें लगारहै जो चित्त ऐसे चित्त करके मेरेको भजताहै सो सर्व योगिनमेंभी श्रेष्ठ योगी है ऐसा मेरी अभिप्राय है ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षष्ठाध्यायप्रवाहः ॥ ६ ॥

इति प्रथमं षट्कं समाप्तम् ॥

अथ द्वितीयषट्कं प्रारभ्यते ।

प्रथम षट्कमें याने प्रथमके छः अध्यायनमें ईश्वरप्राप्तिका उपायरूप भक्तियोगका अंग आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोग कर्मयोगसे कही. अब मध्यषट्कमें याने छःसे बारहपर्यंत छः अध्यायनमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान और उस ज्ञानके माहात्म्यपूर्वक भगवतकी उपासना याने भक्ति इसीको प्रतिपादन करत हैं. इसका खुलासा अठारहवें अध्यायमें पैंतालीस श्लोकपीछे " यतःप्रवृत्तिः " इहाँसे लेके " मद्भक्तिं लभते परां " इस चौअनवें श्लोकपर्यंत कहेंगे, अब सातवें अध्यायमें भगवान् आपका स्वरूपवैभववर्णन करेंगे ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

दोहा—मेरोई करिआसरो, मोहींमेंचितराखि ॥
मोकोजानेसत्यवह, योंसमझावतभाखि ॥ १ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तुम मेरेमें चित्तलगाये भये मेरे आश्रित-

भयेहुये योगमें युक्त भये हुये जैसे संशयरहित समग्र याने विभूतिबलसहित मेरेको जानोगे सो सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

दोहा–ज्ञानौअरुविज्ञानहौं, तोसोंकहौंबखानि ॥
जाकेजानेजानिबो, कछुनरहतहैजानि ॥ २ ॥

मैं तुम्हारेको इस विज्ञानसहित ज्ञानको संपूर्णकरके कहताहौं जिसको जानके फिर इसलोकमें और जानने योग्य नहीं रहताहै ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

दोहा–जतनकरतहैसिद्धिको, एकहजारनिमाहिं ॥
तिनहूमेंकोउलहै, बहुतलखतमोनाहिं ॥ ३ ॥

मनुष्योंके हजारोंमें याने अनेक हजार मनुष्योंमें आत्मज्ञानसिद्धिके वास्ते कोई एक यत्नकरताहै यत्नकरनेवाले सिद्धोंमें भी कोई एक मेरेको निश्चयकरके जानताहै अर्थात् ऐसा जाननेवालाही दुर्लभ है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

दोहा–भूमिनीरपावकपवन, अंबरमनबुधिमानि ॥
अहंकारहैआठवों, मायाभेदनिहानि ॥ ४ ॥
मायामेरीएकयह, जिनजगह्योसंसार ॥
सांचीमनमेंमानिहै, जीवरूपनिरधार ॥ ५ ॥

हेमहाबाहो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे आठ प्रकारकरके न्यारीन्यारीभई यह जो मेरी प्रकृति सो यह अपरा याने जड है और इससे और जीवरूपको मेरी परा याने चेतन प्रकृति जानो जिस प्रकृतिकरके यह जगत् धारण भयाहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

दोहा—मायातेउत्पत्तिहै, सबैजीवइहिदाइ ॥
हौंउपजाऊंजगतसब, नाशकरौंचितचाइ ॥ ६ ॥

सर्वभूत प्राणिमात्र इन्हीं दोनोंसे प्रगट होतेहैं ऐसा जानो. मैं सर्व जगत्का उत्पत्तिस्थान तथा प्रलयस्थानभीहौं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं किंचिन्नान्यदस्ति धनंजय ॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

दोहा—अर्जुनमोतेजोपरे, औरबातजिनिजानि ॥
ज्योंमणिपोहेसूतमें, त्योंसबमोमेंमानि ॥ ७ ॥

सूत्रमें मालाके मणियोंकी तरह मेरेमें यह सर्वजगत् पोहा है इसीसे हे धनंजय मेरेसे न्यारा और कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

दोहा—चंद्रसूरकीकिरनहौं, जलरसमोकोंमानि ॥
वेदनमेंहौंहींप्रणव, पौरुषशब्दबखानि ॥ ८ ॥

" सूत्रे मणिगणा इव " इसीको दिखातेहैं. हे कुंतीपुत्र ! जलमें रस चंद्र-सूर्यकी कांति सर्ववेदोंमें ॐकार. आकाशमें शब्द पुरुषोंमें पुरुषार्थ मैं हौं याने इन जलादिकोंके सार जो रसादिक उनकाभी शरीरी मैं और

वे मेरे शरीर हैं ऐसे अहं शब्दका अर्थ सर्वत्र शरीर शरीरी संबंधसे जानना ॥ ८ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

दोहा—गंधजुहौंहींभूमिमें, हौंपावकमेंतेज ॥
जीवनहूँकोजीवहूँ, तपसिनितपलखिलेजु ॥ ९ ॥

पृथिवीमें पवित्र गंध और अग्निमें तेज मैंही हौं सर्व भूतप्राणिनमें आयुर्थ और तपस्विनमें तप मैं हौं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

दोहा—सबजीवनकोबीजहौं, मोकोजानिजुलेहु ॥
बुद्धिवंतमेंबुद्धिहौं, सबतेजनिकोगेहु ॥ १० ॥

हे पार्थ ! सर्वभूतोंका सनातन उत्पत्तिकारण मेरेको जानों मैं बुद्धि-मानोंमें बुद्धि तेजस्विनमें तेज हौं ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

दोहा—बलुबलवंतनिकोजुहौं, कामरागजितनाहिं ॥
कामरूपहौंहींजुहौं, धर्मबसैमोमाहिं ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ ! मैं जो वस्तु प्राप्त नहीं उनकी कामना और प्राप्त वस्तुमें जो अनुराग इन कामरागों विना बलवंतोंका बल और भूत प्राणिनमें धर्मसे अविरुद्ध कामहौं ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

दोहा–राजसतामससात्विको, जेहैंसगरे भाइ ॥
एसबमोमेंबसतहैं, मोहिंनैनसोंचाइ ॥ १२ ॥

जो शमादिक सात्विक भाव और द्वेषादिक राजस और जो मोहादिक तामसभाव हैं वे मेरेसे हीहैं ऐसे उनको जाना तौभी मैं उनमें नहीं याने उनके स्वाधीन नहीं हौं वे मेरेमें हैं याने मेरे स्वाधीन हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३॥

दोहा–तीनोंगुणकेभावजे, जिनमोह्योसंसार ॥
मोकोकोईनहिंलखत, इनतेपैलीपार ॥ १३ ॥

इन तीनों गुणमय भावोंकरके मोहित यह सर्वजगत् इनसे परे अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

दोहा–मेरीमायागुणमयी, दुस्तरतरीनजाइ ॥
आवैजोकोउमोशरणि, सोउतरैसुखपाइ ॥ १४ ॥

जिसवास्ते कि, यह गुणमयी दैवी याने मेरे संबंधिनी मेरी माया दुरत्यय है इसीसे जो मेरे शरणे होते हैं वे इस मायाको तरते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

दोहा–पापीमूरखजेजगत, तेनहिंपावतमोहिं ॥
ज्ञानजुमायाकरिहत्यो, असुरगुणनिमेंमोहिं ॥ १५ ॥

माया करके हरागया है ज्ञान जिनका ऐसे मनुष्य वे असुरपनेको प्राप्तहुए निंदित कर्म करनेवाले नरनमें अधम मूर्ख मेरेको नहीं भजतेहैं१५॥

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं च स च मे प्रियः १७

दोहा-पुण्यवंतजेचारिविधि, मोहिंभजतचितदैन ॥
ज्ञानीरोगीकामयुत, जिज्ञासीसुनवैन ॥ १६ ॥
ज्ञानीजोभगतहिकरै, सोसवतेअधिकाय ॥
ज्ञानीकोवल्लभजुहौं, ज्ञानीमोहिंसुहाय ॥ १७ ॥

हे अर्जुन! एकप्रकारके जो संसारसे दुःखी दूसरे जाननेकी इच्छा करने वाले तीसरे धनादिक चाहने वाले चौथे ज्ञानी याने स्वरूप ज्ञाता ऐसे चार प्रकारके सुकृती जन मेरेको भजतेहैं. हे भरतर्षभ! तिनमें ज्ञानी नित्य योगयुक्त मेरी मुख्यभक्तिवाला श्रेष्ठ है कारण कि, ज्ञानीके मैं अत्यंत प्रिय हौं और सो मेरे अतिशय प्रिय है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् १८॥

दोहा-मेरेमनमेंसववडे, ज्ञानीमोकोजानि ॥
उत्तमगतिपाईजुतिन, फलनलेतनाहिंमानि ॥ १८ ॥

वे सर्वही उदार हैं ताभी ज्ञानी मेरेको पुत्रवत् प्रिय है ऐसा मेरा अभिप्राय है कारण कि, वह मेरेहीमें चित्तको युक्त कियेभये सर्वोत्तम प्राप्ति मेरेही को ध्यावता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

दोहा–बहुजन्मनिमोकोलहै, ज्ञानवंतरेमित्त ॥
वासुदेवसबमैंलखै, सोदुर्लभहैनित्त ॥ १९ ॥

अनेक जन्मोंके अंतमें सर्वजगत् वासुदेवरूप है ऐसें ज्ञानवान् होताहै याने वासुदेवात्मक जानिके ईर्षादि रहित होताहै तब मेरेकौं भजताहै सो महात्मा अतिदुर्लभ है याने कोट्यावधिनमें कोई एक होता है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

दोहा–ज्ञाननहींतिनकेहिये, सेवतऔरैदेव ॥
अपनेकामस्वभावसों, बँध्योजुताहीभेव ॥ २० ॥

दूसरे सर्वतोआपकी राजस तामस प्रकृतिकरके राजस तामस कर्मोमें लगेभये उनउन कामनाओं करके नष्टज्ञानभयेहुये उनउन पुत्रादिनिमित्तँ नियमोंको धारणकरके अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान् ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवंत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान् देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

दोहा–श्रद्धायुतजेपूजहीं, जोदेवनिचितचाइ ॥
ताकोंतेहीमांझहौं, श्रद्धादेहुबटाइ ॥ २१ ॥
सोवाहीश्रद्धासहित, पूजतवाहीदेव ॥
देतजुहौंहीकामना, वहजानतनहिंभेव ॥ २२ ॥

दोहा-फलथोरोपावततजुवे, विनाज्ञानवेमूढ ॥
देवभक्तिदेवनिलहैं, मेरेमोमेंगूढ ॥ २३ ॥

" तदेवाग्निस्तत्सूर्यस्तदु चंद्रमाः " इत्यादि श्रुतिनके अर्थको खुलासा करनेवाली जो " यस्यादित्यः शरीरं " इत्यादि श्रुतिनके अर्थ रूप इन श्लोकोंकरके अन्य देवतोंको भी भगवान् आपही के शरीरभूत दिखाते हैं. जैसे कि, जो जो भक्त जिस जिस इंद्रादिरूप मेरे शरीरको श्रद्धाकरके अर्चनेको चाहताँ है उस उस भक्तको मैं वही अचलश्रद्धा धारणकरताँ हौं सो भक्त उसी श्रद्धाकरके युक्त उसी इंद्रादिरूप मेरी मूर्त्तिको आराधन करताँ है. और उसीसे मेरेहीं करके नियमित कियेभये हित कामना ओंको प्राप्त होतौं है; परंतु उन अल्पबुद्धिनके वह फल नाशवान् होताँ है; जैसे कि, इंद्रादिदेवपूजनवाले देवोंको प्राप्तहोते हैं मेरे भक्त निश्चय मेरेको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥
परंभावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

दोहा-जाकेंथोरीबुद्धिहै, जानतप्रकटनमोहि ॥
अविनाशीउत्तमजुहौं, सबतेन्यारोजोहि ॥ २४ ॥

मेरे अविनाशी सर्वोत्तम परस्वरूपको न जाननेवाले मूर्खलोग जो मैं सर्वके हृदयमें मूर्त्तिमान् प्राप्त तिस मेरेको अव्यक्त याने अमूर्त्ति मानते हैं. तात्पर्य इसीसे अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

दोहा-ढप्योजुमायायोगहो, काहूकोनप्रकास ॥
मूरखमोहितज्ञानही, अजरअमरसुखवास ॥ २५ ॥

यहां न जाननेका कारण कि, योगमायाकरके आच्छादित मैं सर्वको

दीखता नहीं हौं इसीसे यह मूर्खजन अजन्मा अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

दोहा—जेबीतेजानततिन्हैं, वर्तमानहूंमित्त ॥
　　होनहारसबकोलखौं, मोहिंलखैनहिंचित्त ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! मैं जो प्रथम भये उनको और हैं तिनको और होयंगे उन सर्वभूत प्राणिमात्रोंको जानता हौं, परंतु मेरेको कोई भी नहीं जानता है॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

दोहा—संगदोषअज्ञानतें, सबैंमोहते होत ॥
　　मानिलेतहैंआपुको, हमहैंसुखनिउदोत ॥ २७ ॥

हे भारत ! हे परंतप ! इच्छा और द्वेषकरके उत्पन्नभये सुख दुःख लाभ अलाभादि द्वंद्वरूप मोहकरके सर्वभूतप्राणी संसारमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

दोहा—पुण्यकरैंजेजगतमें, दूरिकियेनिजपाप ॥
　　तेईछुटतजुमोहते, मोकोपावतआप ॥ २८ ॥

और जिन पुण्यकर्मवाले मनुष्योंका पाप नाशको प्राप्त भया है वे द्वंद्व मोहसे छुटेभये दृढव्रती मेरेको भजते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् २९

दोहा-जरामरणकीहानिको, जेकोउकरतउपाय ॥
जानततेअध्यातमहि, ब्रह्मकर्मकेभाय ॥ २९ ॥

जो मेरे आश्रित होके जरामरण छूटनेके वास्ते यत्नकरते हैं वे उस ब्रह्मको और सर्व अध्यात्मको सर्व कर्मको जानते हैं इन ब्रह्मशब्दादिकोंका खुलासा आठवें अध्यायमें होगा ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञान-योगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-अधिदैवतअधिभूतसों, मोकोजानतनित्त ॥
मरनसमयभूलतनहीं, योगीमेरोचित्त ॥ ३० ॥

जो मेरेको अधिभूत और अधिदैवसहित और अधियज्ञसहित जानते हैं वे मनुष्य ही मेरेमें नित्य चित्त लगायेभये मरणकालमें भी मेरेको जानते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
गीतामृततरंगिण्यां सप्तमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच ॥

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

दोहा-अध्यातमकोब्रह्मको, कर्मकहाजगदीश ॥
अधिदैवतअधिभूतको, जानतविश्वेवीश ॥ १ ॥

जो सातवें अध्यायमें कहाथा कि, जो जरामरणसे मुक्त होनेके

वास्ते मेरा आसरा करके यत्न करते हैं वे उस ब्रह्मके तथा सर्व अध्यात्मको और सर्व कर्मको जानते हैं इत्यादि सुनिके अर्जुन कृष्णसे पूंछते हैं कि, हे पुरुषोत्तम ! जो आपने कहा वह ब्रह्म कौन है, अध्यात्म कौनहै, कर्म क्याहै और अधिभूत कौन कहाता है और अधिदैव कौन कहाता है ? ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

दोहा–अधियज्ञहिकासोंकहत, यादेहींमेंकौन ॥
कैसेतुमकोजानई, प्राणकरतजबगौन ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! इस देहमें अधियज्ञ कैसेभया और कौन है और इस लोकमें मरणकालमें जिसने मन जीता है उस करके कैसे जाननेमें आतेहो ? ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

दोहा–अक्षरसोंब्रह्महिकहत, अध्यातमजसुभाय ॥
जोउपजावतजगतको, सोइकर्मस्वभाय ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वचन सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि पर है प्रकृति जिससे याने प्रकृतिमुक्त जो अक्षर याने मुक्त जीव सो ब्रह्म है स्वभाव अध्यात्म कहाता है जो सर्व भूत प्राणिनकी उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग याने सृष्टि सो कर्म संज्ञिक है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

दोहा–देहजुहैअधिभूतयह, अधिदैवतहैजीव ॥
सबदेहिनिकीदेहसे, हौंअधियज्ञसुपीव ॥ ४ ॥

जो क्षरभाव याने नाशवान् देहादिक सो अधिभूत है और पुरुष जो सूर्यमंडलवर्त्ती मेराही एकरूप सो अधिदैवत है. हे देहधारिनमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस देहमें अधियज्ञ मैं हौं याने जीवका पूज्य मैं हौं ॥ ४ ॥

अंतकालेच मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

दोहा-अंतसमयदेहहिंतजत, मोसुमिरतजोकोय ॥
सोतवहींमोकोमिले, तहाँनसंशयहोय ॥ ५ ॥

जो पुरुष अंतसमयमें मेरेहीको सुमिरतासुमिरता देहको त्यागिके इसलोकसे जाताहै सो मेरी समताको प्राप्तहोताहै यहां संशय नहीं ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥
तंतमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

दोहा-प्राणीजबदेहहिंतजै, सुमिरैकोईकाज ॥
यामेंसंशयनाहिने, पावैसोईसाज ॥ ६ ॥

जो मेरा सदा और अंतकालहूमें स्मरण करतेकरते शरीर त्यागै सो तो मेरेहीको पावै. अथवा जो जो भाव याने वस्तु अथवा कोई प्राणीको सुमिरतासुमिरता सदा उसीमें लय लीन भयाहुआ अंतमें देहको त्यागताहै, सो, हे कुंतीपुत्र! उसी उसीको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

दोहा-मेरेसुमिरननिजकरि; शुद्धकरैकिनमित्त ॥
अर्पैमोमेंबुद्धिमन, होंआऊँतबचित्त ॥ ७ ॥

तिससे सर्व कालमें मेरेको सुमिरो और युद्ध करो; ऐसे मेरेमें मन बुद्धिको लगायेभये मेरेहीको पावोगे, संदेह नहीं ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

दोहा–योगऔरअभ्याससें, जाकेथिरचितहोय ॥
मोंचिताराखैसदा, पुरुषहिंपावैसोय ॥ ८ ॥

हे पृथापुत्र ! सदा अभ्यासयोगयुक्त आतमस्वरूपविना दूसरेमें नहीं जानेवाला ऐसे चित्तकरके मेरा चिंतवन करताकरता देदीप्यमान अतिउत्तम ऐसा जो परमपुरुष मैं उसे मेरेको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ९ ॥ १० ॥

दोहा–सबकर्त्तासूक्षमजुअति, कविसुपुरातनमानि ॥
रविसमानसबतेपरे, सुमिरनताकोजानि ॥ ९ ॥
मरनसमैंमनुथिरकरैं, भक्तियोगवलपाय ॥
भ्रुकुटीमधिप्राणहिधरै, परमपुरुषमेंजाय ॥ १० ॥

जोकोई भक्तिकरके युक्त पुरुष मरणसमयमें अचल मनकरके और योगबलकरके भौंहोंके मध्यमें निश्चल अच्छीतरहसे प्राणोंको प्रवेशकरके अर्थात् कुंभककरके जो सर्वज्ञ, पुरातन, सर्वका शिक्षक, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, सर्वको पालनेवाला, नहीं चिंतवनमें आताहै रूपजिसका, सूर्यसरीखाहै प्रकाशमान जोपुरुष और प्रकृतिसे पर उसको सुमिरताहै सो उस परं देदीप्यमान पुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये

दोहा—अक्षरजाकोकहतहैं, वीतरागजहँजात ॥
ब्रह्मचर्यकोजेकरें, तापदकोयहबात ॥ ११ ॥

वेदके जाननेवाले जिसको अक्षर कहते हैं, वीतराग ईश्वरप्राप्तिका यत्न करनेवाले जिसको प्राप्तहोते हैं, जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यको आचरतेहैं, उसी पदको तुम्हारेसे संक्षेपकरके कहौंगा ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥१३॥

दोहा—सर्वद्वारको वशकरे, मनरोकैहियमाहिं ॥
प्राणहिरखेशीशमहि, रहैधारनामाहि ॥ १२ ॥
प्रणवअक्षरकोजपकरै, सुमिरैमोकोनित्त ॥
इहविधिजोदेहहितजे, लहैपरमगतिमित्त ॥ १३ ॥

जो योगी देहको त्यागतोत्यागता सर्व इंद्रियोंको संयममें करके और हृदयमें मनको रोकके आपके प्राणोंको मस्तकमें चढायके योगधारणामें स्थिर भयाहुआ 'ॐ' इस एकअक्षर ब्रह्मको उच्चारण करताकरता मेरेको सुमिरतो सुमिरता देहत्यागिके जाताहै सो अतिउत्तम गतिको प्राप्तहोताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

दोहा—थिरचितह्वैमोकोजपै, सदानिरंतरहोय ॥
तायोगीकोसुलभहौं, औरलहैनहिंकोय ॥ १४ ॥

हे पृथापुत्र! जो अनन्यचित्त मेरेको नित्य निरंतर सुमिरताहै उसी नित्य मेरे संयोग चाहनेवाले योगिको मैं सुलभहौं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

दोहा—महापुरुषसिद्धहिलहै, मोमेंहोतजुलीन ॥
दुखकोघरजोजनमहैं, तामेंहोतुनदीन ॥ १५ ॥

यहांसे अध्यायसमाप्तिपर्यंत ज्ञानी जो कैवल्यार्थी उसकी मुक्ति और ऐश्वर्य चाहनेवालेकी पुनरावृत्ति कहते हैं सो ऐसेकि, जो मेरी उपासनारूप परम सिद्धिको प्राप्तभयेहैं वे महात्माजन मेरेको प्राप्त होके फिर दुःखका घर नाशमान जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

दोहा—ब्रह्मलोकलौंलोकजे, तिनकेफिरतजुलोय ॥
अर्जुनमोकोपाइके, जन्मलहतनहिंकोय ॥ १६ ॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वलोक, पुनरावर्त्ती है और हे कुंतीपुत्र! मेरेको प्राप्तहोके फिर जन्म नहीं होता है ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

दोहा—सहसयुगनिकेअंतलौं, ब्रह्माकेदिनजानि ॥
रात्रीइतनीहोतहै, ज्ञानीकहैबखानि ॥ १७ ॥

ब्रह्मलोकपर्यंत पुनरावृत्ति देखनेको ब्रह्माके दिनरात्रिका प्रमाण दिखाते भये उसको जाननेवालोंकी श्रेष्ठता कहतेहैं-जो ब्रह्माका हजारचतुर्युगीपर्यंत दिन और हजार चतुर्युगीपर्यंत रात्रिको जानते हैं वे मनुष्य दिनरातिके जाननेवालेहैं, याने दीर्घदर्शी हैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञिके ॥ १८ ॥

दोहा-ब्रह्माकेदिनहोतहीं, प्रगटतुहैसंसार ॥
निशिकेआयेजातहै, मायामेंतावार ॥ १८ ॥

दीर्घदर्शित्व दिखाते हैं सो ऐसे कि, ब्रह्माके दिनके आगममें ब्रह्माके शरीरसे सर्व जीवोंके शरीर होते हैं रात्रिके आगममें उसी ब्रह्माके शरीरमें लीन होते हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

दोहा-वारवारउपजतसवै, जीवनसतरेमित्त ॥
ब्रह्माकेदिनरैनिमें, वहीजातहैनित्त ॥ १९ ॥

हे पृथापुत्र ! सोई यह भूतप्राणीसमूह कर्मपरवश भया हुआ सदाही के रात्रिके आगममें लीन होता है, दिनके आगममें उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्स्वपि न नश्यति ॥२०॥

दोहा-ब्रह्मजुमायातेपरे, इंद्रिनिगह्योनजाइ ॥
सवजीवनकोनशतहीं, सोकवहूँननशाय ॥ २० ॥

उस ब्रह्माके जडप्रकृतिशरीरसे श्रेष्ठ और जो अव्यक्त सनातन भाव है याने शुद्धचेतन है सो सर्व आकाशादि और शरीर नष्ट होनेसेभी नहीं नष्ट होता है ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

दोहा-सोईअक्षरपरमगति, ताहिनदेखैकोय ॥
फिरैनताकोपाइके, परमधाममेंजोइ ॥ २१ ॥

वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा है ' कूटस्थोऽक्षरउच्यते ' उसको परमगति कहते हैं जिसशुद्धरूपको प्राप्तहोके नहीं जन्मते हैं वह मेरा सर्वोत्तम

धाम है; याने जैसे प्रकृतिमें मेरा शरीर है और जीवभी मेरा शरीर है परंतु जैसे सर्वघर किसी पुरुषकाहै उसमें निजमंदिर श्रेष्ठहोता है तैसे जीवप्रकृतिमें और मैं जीवमें रहता हौं इससे वह मेरा मुख्यशरीर है. यह कैवल्यमुक्ति-कही, अब ऐश्वर्यप्राप्ति कहते हैं ।। २१ ।।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

दोहा--भक्तिकरैतेपाइये, परमपुरुषसोंजानि ॥
जामेंसगरेजीवहैं, जगविस्तारोआनि ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र ! ये सर्व भूतप्राणी जिसके अंतस्थ हैं और यह सर्व जगत् जिसकरके विस्तरितेहैं सो पर पुरुष याने परमात्मा अनन्यभक्ति करके प्राप्त होने योग्य है ।। २२ ।।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।।
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ।। २३ ।।

दोहा--फिरिआवतजाकालमें, नहिंआवतजाकाल ॥
अर्जुनतोसोंकहतहौं, सुनियहसीखविशाल ॥ २३ ॥

हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिस कालमें देहत्यागिके गयेभये योगी अनावृत्ति-को और आवृत्तिको जाते हैं उस कालको मैं कहता हौं ॥ २३ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।।
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।। २४।।

दोहा—अग्निज्योतिदिनशुक्लषट, उतरायनकेमास ॥
जातजुज्ञानीयासमैं, लहतब्रह्ममेंवास ॥ २४ ॥

जिसकालमें अग्नि प्रकाशक है तथा दिन शुक्लपक्ष हैं ऐसे छःमहीने उत्त-रायण उसमें गये भये ब्रह्मज्ञानीजन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

दोहा--धूमनिशादक्षिणदिशा, कृष्णपक्षजोहोय ॥
शशिमंडलयोगीलहै, फिरिआवतहैसोय ॥ २५ ॥

जिसकालमें धूम राति तथा कृष्णपक्ष छःमहीने दक्षिणायन इसमें गया-भया योगी चांद्रमस ज्योतिको याने स्वर्गपायके यज्ञादि फलभोगिके फिर यहाँ जन्मलेताहै ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

दोहा-शुक्लकृष्णएगतिकही, तेसंसारहिहोति ॥
फिरिआवतहैएकगति, एकलहतहेज्योति ॥ २६ ॥

ये शुक्लकृष्ण मार्ग जगत्के सनातन नियमित हैं एककरके मुक्तिको जाताहै दूसरेकरके फिर जन्मता है ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

दोहा-जो जानै दोऊ गतिन, योगीमोहनहोय ॥
योगीकैअर्जुनतुहूँ, सवकालनिकोजोय ॥ २७ ॥

हे पृथापुत्र ! इनै मार्गोंको जानताभया कोईभी योगी नहीं मोहताहै. हे अर्जुन ! तिससे सर्व कालमें योगयुक्त हो ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा--वेदयज्ञतपदानको, फलजुकह्योहैमित्त ॥
योगीताफलकोलहै, सबदिनरहैनचित्त ॥ ❋
सहफलकोहैसारफल, जोगैहरिसोंयोग ॥
भक्तिकरैमोकोमिलै, फलत्यागैकरिभोग ॥ २८ ॥
हरिवल्लभभाषाकियो, गीताको अभिराम ॥
तामेंसंपूरणभयो, वसु अध्याय ललाम ॥ ❋

मनुष्य इसको जानिके फिरजो पुण्यफल वेदाध्ययनमें, यज्ञमें तपमें और दानमें कहा है उस सबको अतिक्रमण करता है याने उससे भी अधिक फल पाता है, फिर योगीहोके सर्वोत्तम आदिस्थानको पाताहै, याने मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यामष्टमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ८ ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

दोहा--अर्जुनतोसोंकहतहौं, एकगुप्तकीबात ॥
समझैज्ञानविज्ञानको, लहैमुक्तिसोतात ॥ १ ॥

सप्तम और अष्टमअध्यायोंमें आपकी स्वरूपप्राप्ति भक्तिही से अब नवममें आपका सर्वोत्तमप्रभाव और भक्तिका भी प्रभाव कहते हैं सो ऐसे कि, हे अर्जुन ! यह अतिगुप्तकरनेयोग्य विज्ञानसहित ज्ञानको असूया जो पराये गुणमें दोष लगाना उसकरके रहित जो तुम तिनसे कहूंगा जिसको जानिके संसारदुःखसे छूटोगे ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्त्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

दोहा–उत्तमविद्याराजहै, अतिपवित्रतूजानि ॥
फलताकोप्रत्यक्षहै, करिवोहैसुखमानि २ ॥

यह भक्तिज्ञान विद्या और गोप्यवस्तुनमें सर्वोत्तम पवित्र अतिउत्तम प्रत्यक्षफलरूप धर्मयुक्त करनेकोंभी अतिसुगम और अविनाशी है ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

दोहा–करवेकोयाधर्मको, जाकेश्रद्धानाहिं ॥
तेमोकोभावैंनहीं, डोलतहैंभवमाहिं ॥ ३ ॥

हे परंतप अर्जुन ! इस धर्मसंबंधी श्रद्धाको न धारणकरनेवाले पुरुष मेरेको प्राप्तभयेविनाँ मृत्युरूपसंसारमार्गमें फिरते रहतेहैं ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

दोहा–विस्तारोसबजगतमें, मोहप्रगटनहिंहोय ॥
सबैजीवमोमेंबसै, यहईश्वरताजोय ॥ ४ ॥
मोको देखैयोगकरि, सुनिअर्जुनचितलाय ॥
जीवनकरस्थितिजुहौं, ज्ञानीकोप्रगटाय ॥ ५ ॥

यहे सर्व जगत् अतिसूक्ष्म अंतर्यामीरूप मेरे करके व्याप्त है; इससे सर्वभूतप्राणी मेरे स्वाधीन हैं और मैं उनमें नहीं स्थितहौं याने उनके स्वाधीन नहींहौं और वे भूतप्राणी मेरेमें स्थित नहीं हैं याने जैसे घडेमें जल तैसे नहीं हैं मेरे ईश्वरसंबंधी इस योगको देखो भूतोंका भरने पोषनेवाला भी मेरा आत्मा याने मेरा शरीरभूत जीवात्मा भूतोंको धारण करनेवाला और भूतोंमें स्थित नहीं है ॥ ४५ ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

दोहा—जैसे पवनअकाशमें, फिरतरहैसबवार ॥
त्योंमोमेंसबजीवए, फिरतजानिनिरधार ॥ ६ ॥

जैसे महान् वायु नित्यही आकाशमें रहाभया मेरे आधारसे सर्वत्र विचरताहै तैसेंही सर्व भूत मेरे आधार हैं ऐसे निश्चयकरो ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ॥
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

दोहा—मेरीमायामेंरहैं, प्रलयभयेसबजंतु ॥
कल्पआदिसिरजौंतिन्हैं, मोमेंतिनकोतंतु ॥ ७ ॥

हे कुंतीपुत्र! प्रलयकालमें सर्वभूतप्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन होते हैं कल्पकी आदिमें मैं उनको फिर अनेक प्रकारके उत्पन्नकरताहौं ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

दोहा—अपनीमायालेजुहो, सिरजतवारंवार ॥
मायाहीकेवशबस्यौ, रहैसदासंसार ॥ ८ ॥

अपनी प्रकृतिको आश्रयदेके प्राचीनस्वभावके वशसे परवश संपूर्ण इस भूतप्राणीसमूहको वारंवार सृजताहौं ॥ ८ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

दोहा—अर्जुनमोकोकर्मवे, कबहूँबांधतनाहिं ॥
सदाउदासीरहतहौं, आसक्तनातिनमाहिं ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! जो कहोगेकि, ऐसे विषमसृष्टि सृजनेवालेको विषमताके वैषम्यनिर्दयत्वदोष क्यों न लगेंगे तहाँ सुनो, जो वैसृष्ट्यादिक कर्म

करताहैं उनकर्मोंमें असक्त और उदासीनसरीखा स्थित ऐसे मेरेको वे कर्म नहीं बंधनकरतेहैं ॥ ९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

दोहा–हैंप्रेरणमायाहिजब, उपजतसवसंसार ॥
पारथयाहीहेतुते, फिरतसुवारंवार ॥ १० ॥

हे कुंतीपुत्र ! जब मैं अध्यक्ष याने सर्वकृत्यका सम्हारनेवाला होता हौं तब मेरे करके प्रकृति चराचरजगत्को उत्पन्नकरतीहै इस कारण करके जगत् उत्पन्नहोताहै ॥ १० ॥

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमास्थितम् ॥
परंभावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
मोघाशामोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

दोहा–मोकोमानसजानिकै, आदरकरतनकोय ॥
मूरखयेजानतनहीं, यहैजुईश्वरहोय ॥ ११ ॥
उनकीआशासफलनहीं, ज्ञानकर्मतालाय ॥
प्रकृति आसुरीराक्षसी, तामें बूडेधाय ॥ १२ ॥

जो राक्षसी और आसुरी आपसरीखी मोहकारक प्रकृतिको धारण कररहेहैं याने ऐसे स्वभाववाले, निष्फल आशावाले, निष्फल कर्मवाले, निष्फलज्ञान वाले वे भ्रष्टचित्त पुरुष,जो सर्व भूतोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर ऐसे मेरे प्रभावको न जानतेभये मूर्ख अतिकरुणासे मनुष्यरूप शरीरमें स्थित मेरी अवज्ञाकरतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

दोहा-देवप्रकृतिमेंजेमिलैं, कामक्रोधकोत्यागि ॥
तेजाननमोकोसबै, रहतजुहैअनुरागि ॥ १३ ॥

हे पृथापुत्र! दैवी प्रकृतिको प्राप्तभयेहुये महात्माजन मेरेको सर्वभूतोंका आदि और अविनाशी जानिके अनन्यमनवाले भयेहुए मेरेही को भजतेहैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

दोहा-सदा कीरतनममकरैं, जतननिमोव्रतराखि ॥
भक्तिसहितमोकोनवत, मेरोईगुणभाखि ॥ १४ ॥

अब महात्मनके भजनकी रीति कहतेहैं जैसे कि, निरंतर मेरा कीर्तन करतेभये और दृढसंकल्पकिये भये मेरी प्राप्तिके वास्ते यत्नकरतेभये और भक्तिकरके मेरेको नमस्कार करतेभये नित्य मेरे समागमकी इच्छा करनेवाले मेरी उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

दोहा-ज्ञानयज्ञकोऊयजत, मोकोसेवतमीत ॥
कोऊमानतएककरि, कोऊबहुतपुनीत ॥ १५ ॥

और कितनेक महात्मा एकत्वकरके याने सख्यभावसे और कितनेक पृथक्त्वसे याने दास्यभावसे ऐसे बहुधा याने कोई वात्सल्य और कोई शृंगार इत्यादि भावनाकरके सर्वतोमुख याने सर्वव्यापी मेरेको इत्यादि ज्ञानयज्ञकरके पूजतेभये उपासना करतेहैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ॥
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

दोहा-हौंहींक्रतुअरुयज्ञहूं, सुधाओषधीजानि ॥
हौंपावकअरुहोमहौं, मंत्रोमोकोमानि ॥ १६ ॥

अब आपका सर्वव्यापित्व दिखातेहैं सो ऐसे कि; भगवान् कहते हैं कि, क्रतु याने अग्निष्टोमादिक श्रौतयज्ञ मैंहौं, यज्ञ जो स्मार्त पंचमहायज्ञ सो मैं हौं, स्वधा जो पितृनके श्राद्धादिकर्म सो मैं हौं, औषध याने अन्न सो मैं हौं, मंत्र मैं हौं, आज्य याने घृत सो मैं हौं, अग्नि मैं हौं, होमैं मैं हौं यह निश्चय है ॥ १६ ॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७॥
गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥
प्रभवः प्रलयस्थानं निधानं वीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

दोहा-मातापितायाजगतको, हौंहींहोंकरतार ॥
ऋगयजुसामपवित्रहौं, औरवेदओंकार ॥ १७ ॥
गतिनिवासभर्त्ताशरण, साक्षीप्रभुअरुवंधु ॥
प्रलयस्थाननिधानअरु, वीजप्रभावरुवंधु ॥ १८ ॥

इस जगत्‌का पिता, माता, धाता, पितामह जो जाननेयोग्य सो और पवित्र है सो और ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद इस जगत्‌की गति, पालनकर्त्ता, स्वामी, शुभाशुभकर्मनका साक्षी, रहनेका स्थान इच्छितवस्तु देनेवाला और अनिष्टका निवारक सुहृद् उत्पत्ति और नाशका स्थान धारणकरनेवाला अविनाशी उत्पत्तिकारण सर्व मैं ही हौं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

दोहा-तपतगहतछोड़तजुहौं, वर्षतमोहींजानि ॥
अमृतमृत्युकारणकरन, हौंहीअर्जुनमानि ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! अग्नि और सूर्यरूप होके मैंही तपाता हौं, मैंही ग्रीष्मादि-

ऋतुनमें वर्षाको बंदकरता हौं और वर्षाऋतुमें वर्षाताहौं, अमृत और मृत्यु और सत् और असत् मैं निश्चय हौं ॥ १९ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥

दोहा-यज्ञकरतपापनिदहत, चाहतस्वर्गहिवास ॥
इन्द्रलोकलहिभोगवैं, दिव्यभोगसविलास ॥ २० ॥
फिरिआवतभुविलोकमें, क्षीणपुण्यजवहोय ॥
आवागमनजुकरतहै, कामवंतजेसोय ॥ २१ ॥

इस तरहसे महात्मा ज्ञानिनका व्यवहार और आपका वैभव कहा अब सकाम जनोंकी रहनिरीति कहते हैं—जैसे कि, त्रैविद्या याने ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदोक्त इंद्रादिदेव निमित्त यज्ञ करनेवाले सोमपानै कियेभये पापरहितै यज्ञोंकरके इंद्रादिरूप मेरेको आराधिके स्वर्गकी प्राप्ति मानते हैं वे पुण्यरूप इंद्रलोकमें प्राप्तहोके वहां स्वर्गमें दिव्य देवभोगोंको भोगते हैं, फिर वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगिके पुण्य क्षीण होनेसे इसमनुष्यलोकमें प्राप्त होतेहैं. ऐसे वेदत्रयीधर्मको केवल वारंवार करतेभये सकामी जन गतागत याने स्वर्गजाना मनुष्यलोकको आना फिर जाना फिर आना ऐसे फलको पाते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिंतयंतो मां येजनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

दोहा-भक्तिकरैजुअनन्यह्वै, मोहींमेंचितराषि ॥
योगक्षेमतिनकोकरौं, निजजनकोअभिलाषि ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अनन्यभयेहुये मेरा चिंतवर्न करते करते मेरेको भजते हैं उर्न नित्य मेरे संयोग चाहने वालोंका योग जो धनादिककी और मेरी प्राप्ति क्षेम जो धनादि संरक्षण और अपुनरावृत्ति इनको मैं प्राप्तकरताहौं ॥२२॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

दोहा--औरदेवको भक्तजे, सेवतश्रद्धावंत ॥
विधिछोडैंमोकोयजत, लहतनमेरोतंत ॥ २३ ॥

जोकि और देवताओंके भक्त उनको श्रद्धायुक्त पूजन करते हैं वे भी मेराही पूजन करते हैं; परंतु हे कुंतीपुत्र! वे अविधिपूर्वक पूजन करते हैं याने विधिपूर्वक नहीं ॥ २३ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनाऽतश्च्यवंति ते ॥२४ ॥

दोहा-सबयज्ञनकोभोगता, औरसबनकोईस ॥
जोममतत्त्वनजानही, डारततिनकोपीस ॥ २४ ॥

मैं निश्चय करके सर्वयज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी हौं परंतु वे सकामिकजन मेरेको ऐसे निश्चय करके नहीं जानते हैं इससे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

यांति देवव्रता देवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम्॥

दोहा-देवभक्ति देवनि लहै, पितृपूजकपितृथान ॥
भूतयजैभूतहिलहै, मोपूजैभगवान ॥ २५ ॥

अहो जो कहोगे कि, एकही कर्ममें संकल्पमात्रसे कैसे भेद भया

तहां सुनो जो इंद्रादि देवनको भक्तिपूर्वक आराधते हैं तो उनहीको प्राप्त होते हैं, पितृभक्त पितृनको प्राप्त होते हैं; जो कोईसेभी राजा साधू चोर इत्यादि भूत प्राणीकी सेवा संगतिकरते हैं वे उनहीकी समताको प्राप्त होते हैं; जो मेरी भक्तिकरते हैं वे निश्चय मेरेको प्राप्त होते हैं याने मेरी समताको पाते हैं ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

दोहा–पातफूलफलनीरको, जोअर्पैकरिप्रीति ॥
लेउँदियोहौंभक्तको, कियेप्रेमकीरीति ॥ २६ ॥

जो कहोंगे कि, बडेनके प्रसन्न करनेको बड़े उपाय चाहिये तहां सुनो जो कोई पत्र, पुष्प फल, जल मेरेको भक्तिकरके युक्त अर्पण करताहै मैं उस शुद्धचित्तभक्तका भक्तिपूर्वक अर्पणकियेभये उस पत्रादिके पदार्थको स्वीकार करताहौं ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

दोहा–जोकछुकरतुहैखातुहै, जोहोमतजोदेत ॥
अर्जुनजोतूतपकरै, मोहिंतोहिंकरहेत ॥ २७ ॥
भलेबुरेजेकर्म हैं, तिनतेछुटिहैमित ॥
युक्तयोगसन्यासकरि, मोमिलिहोहिनिचिंत ॥ २८ ॥

हे कुंतीपुत्र, मेरेको ऐसा सुलभ जानिके जो कुछभी तुमकरौ, जोखाउ, जो होमौ, जो देउ; जो तपकरौ उसको मेरे अर्पण किये भये करौ; ऐसे करतेभये जो कर्मबंधनकारकहैं उन शुभाशुभ फल कर्मों करके छुटोगे.

ऐसेही इस कर्मफल अर्पण संन्यासयोगयुक्त चित्तवाले तुम मुक्तभयेहुये मेरेको प्राप्तहोवेगे ॥ २७ ॥ २८ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ॥
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९

दोहा–हौंसबठौरसमानहौं, मेरे प्रीतिनद्रोह ॥
मोकोसेवतभक्तये, तिनसोंमोकोमोह ॥ २९ ॥

मैं सर्वभूतोंपर सम हौं मेरे न अप्रिय न कोई प्रिय है. परंतु जो मेरेको भक्तिकरके भजतेहैं वे मेरे हृदयमें और उनके हृदयमें निश्चय करके मैं रहताहौं ॥ २९ ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

दोहा– दुराचारमोकोभजै, कैअनन्यकेभाय ॥
ताकोतुमसाधूगनो, शुभनिश्चयकेदाय ॥ ३० ॥
वेगहोहिधरमातमा, शांतिलहैबहुभाय ॥
अर्जुननिश्चयजानितू, नहिंमोभक्तिनशाय ॥ ३१ ॥

जो कदाचित् कोई पुरुष अतिदुराचारीभी होई और वह मेरेको अनन्यभाक् याने औरको न भाग देताभया सर्वत्र मेरेहीको जानिके सर्व मेरे अर्पण करताभया भजताहोय सो साधुहीहै ऐसे मानना चाहिये, जिससे कि वह सम्यक् निश्चय कियेहै उससे वह शीघ्रही धर्मात्मा होयगा और मोक्षहीको प्राप्तहोयगा. हे कुंतीपुत्र ! तुम यह निश्चय जानो कि, मेरा भक्त नहीं नाशको पावताहै याने मुक्तही होताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ॥

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम् ३२।३३

दोहा-अर्जुनसेवतमोहिंजो, पापजोतनहूँहोय ॥
त्रियाशूद्रअरुवैश्यपुनि, लहैपरमगतिसोय ॥ ३२ ॥
द्विजपुनीतअरुभक्तवर, राजऋषीसुखभाय ॥
सुखअनित्ययालोकको, मोकोभजिचितचाय ॥ ३३ ॥

हे पृथापुत्र! निश्चयपूर्वक मेरेको आश्रय करके जो पापयोनि भी होय तथा स्त्री शूद्र वैश्य वेभी मोक्षको जातेहैं. जो पवित्र ब्राह्मण तथा क्षत्रिय भक्तहैं उनकी मोक्षको फिर क्या शंकाहै! इससे अनित्य दुःखरूप इस लोकको पाइके मेरेको भजो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-मोकोभजियै नम्रह्वै, मोहीमेंमनराखि ॥
इही भाँतितूमोहिंमिलि, प्रेमनिसोंअभिलाषि ॥ ३४ ॥

भजनरीति यह कि, मेरेहीमें मनको युक्त कियेभये रहो मेरेही भक्त मेराही पूजन करनेवाले होउ; मेरेहीको नमस्कार करो; ऐसे मनको मेरेमें युक्तकरके मेरेही परायण भयेहुये मेरेही को प्राप्तहोवोगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां नवमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ९ ॥

सप्तमादिक तीनों अध्यायोंमें श्रीकृष्णजीने आपका भगवत्तत्त्व और विभूतिवर्णन की. जैसे कि, सप्तममें " रसोहमप्सु कौंतेय" इत्यादि. अष्टममें " अधियज्ञोऽहमेवात्र " इत्यादि, नवममें " अहंक्रतुः " इत्यादिकरके संक्षेपसे कहीं. उनको और भक्तिकी आवश्यकता अब दशमाध्यायमें विस्तारसे कहते हैं ॥

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

दोहा-दुरीवाततोसोंकहत, सुनिअर्जुनचितलाय ॥
ह्वैप्रसन्नतोसोंकहत, तेरेहितकेभाय ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् कहतेभये कि, हे महाबाहो ! मेरा सर्वोत्तम वाक्य फिरभी सुनो; जो वाक्य प्रीतियुक्त जो तुम तिन तुमसे तुम्हारे हितके वास्ते मैं कहताहों ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

दोहा-देवोऋषिनाहिंजानही, मोउत्पतिहूंमीत ॥
देवऋषिनकीआदिहूं, तिनहूंरहतपुनीत ॥ २ ॥

मेरा जन्मभया ऐसा न देवता न महर्षी जानते हैं; कारण कि, मैं देवनका और सर्व महर्षिनकाभी आदिहौं ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा-अजअनादिजगदीशपुनि, मोकोलखतजुकोय ॥
सबमेंज्ञानीवहबड़ो, पापनिडारतधोय ॥ ३ ॥

जो मेरेको अजन्मा और अनादि लोकमहेश्वर जानताहै सो मनुष्योंमें ज्ञानीहै और सर्वपापोंकरके छुटाहै ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

दोहा—बुद्धिज्ञानशमदमक्षमा, अरुव्याकुलताहोय ॥
सुखभवदुखआभावभय, औरअभैहूंजोय ॥ ४ ॥
तोषअहिंसादानतप, समयशअयशौंजानि ॥
जीवनकोसबभावए, मोकोहोतसुमानि ॥ ५ ॥

बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम; सुख, दुःख, उत्पत्ति, नाश, भय और अभयभी और अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश अयश ये न्यारे न्यारे भूतोंके भाव मेरेहीसे होतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

दोहा—सातौंऋषिअरुचारिमनु, मोमनतेउद्योत ॥
सबहीलोकनिमेंभये, इनहीकेसबगोत ॥ ६ ॥

सात महाऋषी याने मरीचि वसिष्ठादिक महाऋषि चार इनके भी पूर्वज याने सनकादिक ऋषी तथा चौदह मनु मेरे संकल्पज मन इच्छा प्रमाण उत्पन्नहोतेभये जिनके लोकमें ये प्रजाहैं ॥ ६ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

दोहा—मेरेयोगविभूतिको, तत्त्वजानिजोलेत ॥
निश्चलयोगहिसोलहत, रहतजुयाहीहेत ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी[2] महर्षी इत्यादिकोंकी[3] उत्पत्तिरूप इस विभूतिको और कल्याणगुणादिरूप योगको तत्त्वसे जानताहै सो अचल भक्तियोगकरके युक्तहोताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

दोहा-हौंहीईश्वरजगतको, मोहींतेसबहोय ॥
ज्ञानवंतयहजानिकै, मोहींसोंव्रतजोय ॥ ८ ॥

मैं[1] सर्वकी उत्पत्तिस्थानहौं मेरेसे सर्व प्रवर्त्त होताहै ऐसा मेरेको मानिके भावसंयुक्त ज्ञानीजन मेरेको[11] भजते हैं[12] ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ ९ ॥

दोहा-प्राणचित्तमोमेंधरत, बोधपरस्परदेत ॥
मेरेचरितनिकहतनित, मानितोपसुखलेत ॥ ९ ॥

उनका भजन प्रकार यह कि, मेरेहीमें जिनका चित्त हैं श्वासोच्छ्वास-पर मेरा स्मरण करते रहते हैं, परस्पर एक दूसरेको उपदेश करतेभये निश्चयपूर्वक मेरेको याने मेरेही गुणगणनको कहते कहते निरंतर संतुष्ट होतेहैं और मेरी करीभई क्रीडायें करने लगतेहैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥

दोहा-सेवतमोकोंतेसदा, भक्तियोगकेभाय ॥
भलीबुद्धिवेलहतहैं, रहतजुमोमेंआय ॥ १० ॥

ऐसे वे निरंतर मेरे संगी मेरेको प्रीतिपूर्वक भजनेवाले तिनको उसे बुद्धियोगको देताहौं कि, जिसकरके वे मेरेको[10] प्राप्त होतेहैं ॥ १० ॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११॥

दोहा--तमअज्ञानहिंदूरिकरि, दयावंतजेहोत ॥
करतजुतिनकेहीयमें, ज्ञानदीपउद्योत ॥ ११ ॥

उनहीकी दयाके वास्ते उनकी मनोवृत्तिमें रहागया मैं प्रकाशित ज्ञान रूप दीपकरके उनके अज्ञानजन्य तिमिरका नाश करताहौं ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे १३

दोहा--परमब्रह्मपवित्रतुम, परमानंदकोधाम ॥
अजअविनाशीपुरुषहौ, आदिदेवतुमनाम ॥ १२ ॥
सबऋषिइहिविधिकहतहैं, नारददेवलजानि ॥
व्यासअसिततुमहूंकहत, तातेंलीनेमानि ॥ १३ ॥

ऐसे श्रीकृष्णजीके वाक्य सुनिके अर्जुन बोले कि, आप परब्रह्म हो श्रेष्ठप्रभाव हो परम पवित्र हो; सर्व ऋषिजन आपको अविनाशी दिव्य पुरुष आदिदेव अजन्म व्यापक ऐसे कहते हैं, वे ये जैसे कि, देवऋषि नारद तथा असित देवल व्यास और आप भी मेरेसे कहतेहो १२।१३

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

दोहा--जोकछुतुममोसोंकहत, मानतहौंसतभाय ॥

दानवदेवनजानहीं, तुमप्रगटेकोदाय ॥ १४ ॥

हे केशव ! जो मेरेसे कहतेहो यह सर्व सत्य मानता हौं, कारण कि, हे भगवन् ! तुम्हारी उत्पत्तिको न देवता जानते हैं न दानव जानतेहैं॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

दोहा--आपुनपोआपुनलखौ, तुमपुरुषोत्तमदेव ॥
जीवनउपजावतरहित, पालतदेवनिदेव ॥ १५ ॥

हे पुरुषोत्तम ! हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! आप आपको आपहीकी बुद्धिसे आपही जानतेहो ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि१६॥

दोहा–निजविभूतिमोसोंकहौ, प्रभुजुवित्तकेदाय ॥
जोविभूतिश्रीकृष्णजू, रहीजगतमेंछाय ॥ १६ ॥

जो दिव्य आपकी विभूती हैं उनको समग्रतासे कहनेको योग्यहो जिन विभूतिनकरके इन लोकोंमें व्यापिके रहेहो ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगी त्वां सदा परिचिंतयन् ॥
केषु केषु च भावेषु चिंत्योसि भगवन्मया ॥ १७॥

दोहा–ध्यानतुम्हारोकरिप्रभू, मानोंकैसेतोहिं ॥
कौनपदारथमेंलखों, सोसमुझावोमोहिं ॥ १७ ॥

मैं भक्तियोगयुक्तभयाहुआ आपको सदा ध्यावताभया कैसे जानौं. हे भगवन् ! आप मेरेकरके कौन कौनसे रूपोंमें ध्यावनयोग्यहो ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् १८

दोहा-योगविभूत्योआपनी, कहियेमोकोदेव ॥
मोकोतृप्तिनहोतहै, सुनतअमीरसभेव ॥ १८ ॥

हे जनार्दन ! आपकी प्राप्ति उपाय और विभूति याने वैभव सो विस्तारसे फिर कहो. याने संक्षेपसे कहा अब विस्तार कहो क्योंकि, इस अमृतरूप माहात्म्यको सुनते सुनते मेरे तृप्ति नहीं होतीहै ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥१९॥

दोहा-अर्जुनतोसोंकहतहौं, निजविभूतिविस्तार ॥
मुख्यजितेतेईकहत, हियकेदृगनिनिहार ॥ १९ ॥

ऐसे सुनिके भगवान् बोले कि, हंत याने हे अर्जुन ! तुम्हारेसे दिव्य मेरी विभूतिनको प्रधानतासे याने मुख्य मुख्य कहौंगा क्योंकि, हे कुरुश्रेष्ठ मेरे विस्तारका अंत नहीं है ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

दोहा-सबजीवनकेहीयमें, मोहिंआतमाजानि ॥
आदिअंतअरुमध्यहौं, मोहींसबमेंमानि ॥ २० ॥

हे गुडाकेश ! सर्वभूतोंके अंतःकरणमें रहाभया मैं सर्वभूतोंका अंतर्यामी हौं और मैं हीं आदि और मध्य और अंतभी हौं, अब यहांसे मैं मैं कहते जायंगे यहां ऐसा अर्थ करना कि, जैसे आदित्यनमें विष्णुनामआदित्य मैं हौं ऐसे कहनेसे यह भया कि, विष्णु आदित्य मेरी श्रेष्ठ विभूति है याने उसमें मेरी शक्ति जादाहै ऐसाही जहां मैंहीं हौं शब्द आवै तहां समझना विशेष गीतावाक्यार्थबोधिनी टीकामें मैंने लिखाहै. वहां श्रुतिस्मृतिनकाभी प्रमाण दियाहै सो देखलेना ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

दोहा-आदित्यनमेंविष्णुहौं, ज्योतिनमेंरविदेखि ॥
वायुनमाँझमरीचिलें, नक्षत्रनिशशिलेखि ॥ २१ ॥

द्वादश आदित्यनमें विष्णुनाम आदित्य मैं हौं, ज्योतिनमें किरणवंत सूर्य उनचास मरुतनमें मरीचिमरुत् नक्षत्रोंमें चंद्रमा मैं हौं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

दोहा-सामवेदहौंवेदमें, इंद्रअमरगणमाँह ॥
जीवनमैंहौंचेतना, मनइंद्रिनकोनाँह ॥ २२ ॥

वेदनमें सामवेद हौं, देवनमें इंद्र हौं और इंद्रियोंमें मन हौं भूतप्राणिनमें चेतना हौं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ॥
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

दोहा-रुद्रनिमेंशंकरजुहौं, यक्षनमाँझधनेश ॥
पावकहौंहींवसुनिमें, शैलसुमेरसुदेश ॥ २३ ॥

रुद्रनमें शंकर हौं यक्षराक्षसोंमें कुबेर, अष्टवसुनमें अग्नि, शिखरवालोंमें मेरुपर्वत मैं हौं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

दोहा-देवपुरोहितमुख्यजो, मोहिंबृहस्पतिमानि ॥
षटमुखसेनापतिनमें, सरमेंसागरजानि ॥ २४ ॥

हे पृथापुत्र ! पुरोहितनमें मुख्य बृहस्पति मेरेहीको जानो सेनापतिनमें कार्त्तिकस्वामी, सरोवरनमें समुद्र मैं ही हौं ॥ २४ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

दोहा–हौंहिमहर्षिनमाँझभृगु, वाणिनिमेंजुॐकार ॥
यज्ञनिमेंजपयज्ञहौं, स्थावरहिमआधार ॥ २५ ॥

महर्षिनमें भृगु वाक्यनमें एक अक्षर याने " ओम् " मैं हौं यज्ञनमें जपयज्ञ, स्थावरोंमें हिमाचल हौं ॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

दोहा–पीपरहों सब तरुनमें, ऋषिमेंनारददेव ॥
गंधर्वनमेंचित्ररथ, सिद्धकपिलमेंभेव ॥ २६ ॥

सर्ववृक्षनमें पीपर और देवऋषिनमें नारद, गंधर्वनमें चित्ररथ सिद्धनमें कपिलमुनि हौं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

दोहा–अश्वनमेंउच्चैःश्रवा, गजऐरावतनाम ॥
हौंहींनृपहौनरनमें, पोषतसबकेकाम ॥ २७ ॥

घोडोंमें अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवाको, हाथिनमें ऐरावतको और मनुष्योंमें राजा मेरेहीको जानो ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८॥

दोहा–हथियारनमेंवज्रहौं, कामधेनुमेंगाय ॥
कामप्रजापतिमाँझहौं, वासुकिसर्पनराय ॥ २८ ॥

आयुधनमें वज्र, धेनुनमें कामधेनु मैं हौं उत्पत्तिकारक कामदेव हौं एकशिरवाले सर्पनमें वासुकिसर्प मैं हौं ॥ २८ ॥

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

दोहा–नागनिमाँझअनंतहौं, वरुणजुहौंजलजंतु ॥
पितरनिमेंहौंअर्यमा, यमहौंसंयमवंतु ॥ २९ ॥

अनेक शिरवाले सर्पोमें शेषजी, मैं हौं; जलजीवनमें मैं वरुण हौं पितृनमें अर्यमा शासनकरनेवालोंमें मैं यम हौं ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥
मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

दोहा–दैत्यनमें प्रहलाद हौं, प्रेरनहारोकाल ॥
सिंहजुहौंसवमृगनमें, पक्षिनमेंरिपुव्याल ॥ ३० ॥

दैत्यनमें प्रह्लाद हौं, अनर्थकारककी गिनतीकारकोंमें मैं काल हौं, मृगोंमें मैं सिंह हौं. पक्षिनमें गरुड़ हौं ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

दोहा–उत्तालनिमेंपवनहौं, शस्त्रधरनिमेंराम ॥
जलजंतुनमेंमकरहौं, नदीगंगअभिराम ॥ ३१ ॥

पवित्रकारकोंमें पवन हौं शस्त्रधारिनमें राम साक्षात् मैं हौं, यहां अस्त्रधारणमात्र विभूति है मच्छनमें मकर हौं प्रवाहवालोंमें श्रीभागीरथी हौं ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

दोहा–अध्यातमविद्यानमें, वादवादियनमाहिं ॥
आदिअंतअरुमध्यहूँ, सबैसृष्टिकोनाहिं ॥ ३२ ॥

सर्व जो ब्रह्माके दिवस उनमें आदि उत्पत्तिकारक अंत प्रलयकारक और मध्य रक्षकभी मैं हौं. हे अर्जुन ! सर्वविद्यानमें अध्यात्मविद्या वाद करनेवालोंमें वाद याने सिद्धांत मैं हौं ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ॥
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

दोहा–अक्षरमाहिंअकारहौं, द्वंद्वसमासनिजानि ॥
हौंहींअक्षरकालहौं, धातामोकोमानि ॥ ३३ ॥

अक्षरोंमें अकार हौं समासनमें द्वंद्वसमास, अक्षय काल मैं चौतरफ मुख जिसके ऐसा सर्वनका भरनेपोषनेवाला मैं हौं ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ३४

दोहा–जोसबकोसंहरतहौं, औरउपावनहार ॥
श्रीकीरतिसरस्वातिक्षमा, हौंहींबुद्धिसम्हार ॥ ३४ ॥

सर्वका हरनेवाला मृत्यु मैं और आपकी बढती चाहनेवालोंमें उद्भव याने बढती मैं हौं; स्त्रीजनोंमें कीर्त्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हौं ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

दोहा–महासामहौंसाममैं, गायत्रीहौंछंद ॥
मार्गशीर्षहौंमासमैं, ऋतुवसंतसुखकंद ॥ ३५ ॥

तैसे सामवेदके मंत्रोंमें बृहत्साम, छंदों में गायत्रीमंत्र मैं हौं महीनोंमें मार्गशीर्ष ऋतुनमें वसंत मैं हौं ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ३६

दोहा-जूवाहौंसवछलनिमें, तेजस्विनमेंतेजु॥
जयअरुउद्यमसत्यहौं, सतुसतवंतनिमेंजु॥ ३६॥

छलकारिनमें जूवा तेजस्विनमें तेज मैं हौं, जीतनेवालोंमें जय हौं निश्चयवालोंमें निश्चय हौं, उदारनमें उदारता मैं हौं॥ ३६॥

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पांडवानां धनंजयः॥
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥ ३७॥

दोहा-यदुकुलमेंहौंकृष्णहौं, अर्जुनपांडवमाहिं॥
मुनिनमांझहौंव्यासमुनि, गनौशुक्रकविताहि॥ ३७॥

वृष्णिवंशिनमें वासुदेव यहां वसुदेवपुत्रत्व मात्र विभूति जानना पांडवमें अर्जुन तुम हो सो श्रेष्ठ विभूति हो इससे तुमभी मैं हौं, मुनिनमें व्यासजी मैं हौं, कवि जो शास्त्रदर्शी उनमें शुक्राचार्य कवि मैं हौं॥ ३७॥

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्॥
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥ ३८॥

दोहा-दंडवतिनमेंदंडहौं, जीतवंतकोनीत॥
ज्ञानिनमेंहौंज्ञानसम, मौनदुरावनरीत॥ ३८॥

स्ववशकर्तनमें दंड हौं, जय चाहनेवालोंमें नीति हौं गुप्तकरनेके उपायोंमें मौन हौं; ज्ञानिनमें मैं ज्ञान हौं॥ ३८॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन॥
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥३९॥

दोहा-सबजीवनिकोबीजहौं, अर्जुनमोकोजानि॥
स्थिरचरयासंसारमें, मोविनकछूनमानि॥ ३९॥

हे अर्जुन ! सर्वभूतोंका जो आदिकारण है सो मैं हौं; जो चराचर भूत मेरे विना होय सो नहीं है ॥ ३९ ॥

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

दोहा–मेरीदिव्यविभूतिको, अंतनजान्योजाय ॥
यहतोथोरोसोकह्यो, मोविभूतिकोभाय ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतिनका अंत नहीं है परंतु यह विभूतिका विस्तार मैंने संकेतमात्रसे कहाहै ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥
तत्तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥ ४१ ॥

दोहा–जोकछुयासंसारमें, काहूगुणअधिकाय ॥
सोसबमेरोतेजहैं, दीनोंतोहिंबताय ॥ ४१ ॥

जो जो प्राणी ऐश्वर्यवान्, शोभायमान अथवा बडा होय सो सो मेरे तेजके अंशयुक्त है ऐसे तुम जानो ॥ ४१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–कहाकरेगोजानिकै, अर्जुनयहविस्तार ॥
मदंशसेस्थितमैंहिहूँ, व्यापकसबसंसार ॥ ४२ ॥

हे अर्जुन ! अथवा इस बहुत जानकरके तुम्हारे क्या प्रयोजन है मैं इस सर्व जगतको एक अंशकरके धारण कियेभये स्थित हौं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां दशमोऽध्यायप्रवाहः ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच ॥

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

दोहा—मोहूपरकीनीदया, अध्यातमप्रगटाय ॥
वचनतुम्हारेसुनतहीं, मोहजुगयोनशाय ॥ १ ॥

जब भगवान्‌ने आपकी विभूति कही और उसमें आपका स्वरूप वर्णन किया तब सुनिके अर्जुन देखनेकी इच्छा करके बोले कि, हे भगवान् ! मेरे अनुग्रहके वास्ते सर्वोत्तम गोप्य अध्यात्मसंज्ञित याने आत्मज्ञानविषयक जो वचन आपने कहा उसकरके मेरा यह मोह गया ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ॥
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

दोहा—जीवनिकीउत्पत्तिसुनि, औरप्रलयकीरीति ॥
कहीजुतुमविस्तारसों, आतमकीशुभनीति ॥ २ ॥

कारण कि, हे कमलदलनयन ! भूतप्राणिनके उत्पत्ति, प्रलय आपसे मैंने विस्तारपूर्वक सुने और आपका अक्षय माहात्म्यभी सुना ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

दोहा—योहीहैजोकहतहौं, हरिजीअपनेभेव ॥
देख्योचाहतहौंअबै, रूपतुम्हारोदेव ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! तुम आपको जैसे कहतेहो यह ऐसाही है हे पुरुषोत्तम ! तुह्मारे ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज इन छः ऐश्वर्य युक्त रूपको देखनेको चाहताहौं ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

दोहा–देखतयोगहिमाहिजो, जानतहौयदुराय ॥
अविनाशीनिजरूपतौ, दीजैमोहिंदिखाय ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! जो वहरूप मेरेकरके देखनेको योग्य है ऐसा मानतेहो हे योगेश्वर ! तौ तुम अविनाशी आपके रूपको मेरेको देखावो ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

दोहा–अर्जुनअबतूदेखिले, शतसहस्रमोरूप ॥
बहुतभांतिहैदिव्यजो, नानावर्णअनूप ॥ ५ ॥

ऐसे वचन सुनिके भगवान् बोले कि, हे पृथापुत्र ! सैंकडों फिर हजारों अनेकप्रकारके दिव्य और अनेकवर्ण आकारके मेरे रूपोंको देखो ॥५॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ॥
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

दोहा–देखिरुद्रआदित्यवसु, अश्विनिसुतमोमाहिं ॥
औरौअचरजरूपजे, पहिलेदेखेनाहिं ॥ ६ ॥
इनठौरैमोदेहमैं, थिरचररहेसमाय ॥
देख्योचाहतजोकछू, सोईदेतुदिखाय ॥ ७ ॥

हेभारत ! मेरी देहमें द्वादशसूर्य अष्टवसु ११ रुद्र अश्विनीकुमार ४९ मरुत् देखो तथा जो प्रथम न देखे ऐसे बहुत आश्चर्य

देखो हे गुंडाकेश ! इसमेरे देहमें सचराचर सर्व जगत् एकही ठिकाने इकट्ठेको आज देखो और जा औरभी देखनेको चाहतेहो उसे भी देखो ॥ ६ ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

दोहा-इननैननननहिंदेखिये, देउँदिव्यदृगतोहिं ॥
राजयोगसंयुक्ततू, जैसेदेखैमोहिं ॥ ८ ॥

इस आपकी दृष्टिकरके मेरेको देखने को न समर्थ होवोगे इससे तुमको दिव्य नेत्र देताहौं तिसकरके मेरे ईश्वरसंबंधी योग को देखो ॥ ८ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ॥
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

दोहा-योगीश्वरश्रीकृष्णजू, कहिवचननयाभाय ॥
परमरूपऐश्वर्य्यहो, सोदीनोप्रगटाय ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेभये कि, हे राजन् ! महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ऐसे कहिके फिर सर्वोत्तम ईश्वरसंबंधी रूप अर्जुनको दिखाते भये ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

दोहा-बहुआननलोचनबहुत, देखेअचरजहोत ॥
भूषितनानाभूषणनि, शस्त्रअनेकउदोत ॥ १० ॥

जिस रूपमें अनेक मुख और नेत्र हैं और अनेक अद्भुत दर्शन हैं अनेक दिव्य आभूषणयुक्त हैं और दिव्य अनेक उगाये हैं आयुध जिसमें ॥ १० ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

दोहा–दिव्यहारदिव्यैवसन, दिव्यसुगंधलगाय ॥
अनँगरूपसुखहैजिते, शोभितनानाभाय ॥ ११ ॥

दिव्य माला और वस्त्रधारणकिये हैं दिव्य चंदनादि गंधका लेपन किये हैं सर्व आश्चर्यमय प्रकाशमान् अंतरहित और सब ओर जिसमें मुख हैं ऐसा रूप अर्जुनको दिखातेभये ॥ ११ ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

दोहा–सहस्रकिरणआकाशमें, पूरीरहसोज्योति ॥
दीपतिताप्रभुकीलखै, तऊनसमताहोति ॥ १२ ॥

जो आकाशमें हजारों सूर्यनका एक समयमें उत्पन्नभयाहुआ तेज होय सो तेज उन महात्मा भगवानके तेजके समान हो यें ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

दोहा–भिन्नभेदजेजगतमें, देखसबइकठौर ॥
देवदेवकीदेहमें, अर्जुनदेखेऔर ॥ १३ ॥

उस देवनकेभी प्रकाशक कृष्णके शरीरमें उससमयमें अनेक प्रकारका न्यारा न्यारा एकही ठिकाने इकट्ठा ऐसे सर्व जगत्को अर्जुन देखते भये ॥ १३ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

दोहा–ताकोसबअचरजभयो, रोमहर्षकेदाय ॥
तादेवहिपरणामकरि, बोल्योचितकेचाय ॥ १४ ॥

तब विस्मय करके व्याप्त रोमांचयुक्त वह अर्जुन कृष्णको मस्तकसे प्रणामकरके हाथ जोरेभये बोले ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

दोहा—देखतहोंतुमदेहमें, सबसुरथिरचरसिद्ध ॥
कमलासनऋषिईशपुनि, सर्वनागशुभविद्ध ॥ १५ ॥

अर्जुन कहतेहैं कि, हे देव ! तुम्हारे शरीरमें देवनको तथा सर्व भूत प्राणिनके समूहोंको तथा ब्रह्माको और कमलासन जो ब्रह्मा उनमें स्थिर जो ईश्वर याने आपही तिनको और सर्व ऋषिनको और दिव्य सर्पनको देखताहौं ॥ १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

दोहा—बहुतबाहुउदरौबहुत, मैंदेखेबहुशीश ॥
अंतआदिमध्यौनहीं, ऐसेतुमजगदीश ॥ १६ ॥

हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! तुमको सर्व ओरसे अनेक भुजा उदर मुख और नेत्रवाले अनंतरूप देखताहौं तुम्हारा न अंत न मध्य न फिर आदि देखताहौं ॥ १६ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

दोहा–मुकुटशीशकरचक्रगद, रूपराशिभगवान ॥
दृगनिचौंधिचितवनलगे, होरविअनलसमान ॥ १७ ॥

तुमको किरीटवान् गदावान् चक्रवान् और तेजकी राशि सर्व ओरसे प्रकाशवान् सर्व ओरसे दुर्निरीक्ष्य प्रदीप्त अग्नि और सूर्यनकी कांतिसरीखी कांतिमान् और अपरिमितरूप देखताहौं ॥ १७ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

दोहा–अक्षरहौतुमहींपरम, हौसबजगतनिधान ॥
अविनाशीरक्षकसबनि, उत्तमहोउनमान ॥ १८ ॥

जो मुमुक्षुजनोंकरके जानने योग्य सर्वोत्तम विष्णु आप हौं इस विश्व के श्रेष्ठ आधार आप हौं सनातनधर्मके रक्षक अविनाशी आप हौं सनातन पुरुष आप हौं यह मैंने जाना है ॥ १८ ॥

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

दोहा–आदिअंतमधिरहिततुम, रविशशिहैंतुमनैन ॥
तुमरोमुखदीपतिअगनि, सबहीकोतपुऐन ॥ १९ ॥

नहीं है आदि, मध्य और अंत जिनके अनंत हैं पराक्रम जिनके अनंत हैं भुजा जिनके चंद्र सूर्य नेत्र हैं जिनके प्रदीप्त है अग्निसदृश मुख जिनके जो आपके तेजकरके इस विश्वको तपायमान कररहहा ऐसे तुमको देखताहौं ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन

दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

दोहा-गगनभूमिमधिसर्वदिशि, व्यापितुमइकहेजु ॥
अद्भुतरूपसुउग्रलखि, प्रविथितलोक सवेजु ॥ २० ॥

हे महाशरीर ! द्यावापृथिवीका यह अंतर याने इस ब्रह्मांडका पोल आप एक करके व्याप्त है और सर्व दिशा व्याप्त हैं अर्थात् ऊँचाई करके ब्रह्मांड पोल और चौड़ाई करके सर्व दिशा पूरगई हैं ऐसे आपके इस अद्भुत उग्र रूपको देखिके तीनों लोक यानि तीनों लोकोंके वासी देव मनुष्यादिक व्याकुल हैं ॥ २० ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

दोहा-पैठततोमेंदेवसब, स्तुतीकरतभयमानि ॥
ऋषिअरुसिद्धमहातमा, नयतजुतोकोजानि ॥ २१ ॥

ये देवतनके समूह आपके समीप प्राप्त भयेहैं कितनेक भयभीत हाथ जोरेभये तुम्हारे गुण नाम उच्चारण करते हैं महर्षी और सिद्धनके समूह स्वस्ति ऐसे कहिके तुम्हारी अनेक प्रकारकी स्तुतिन करके स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षंते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

दोहा-रुद्रसाध्यआदित्यवसु, अश्विनिसुतअरुवाय ॥
सिद्धयक्षगंधर्वसुर, देखतअचरजपाय ॥ २२ ॥

एकादश रुद्र द्वादश आदित्य अष्टवसु और जो साध्य नामके उपदेव तेरह विश्वेदेव दो अश्विनीकुमार उंचास मरुत् और पितर और गंधर्व यक्ष देवता और सिद्ध इनके समूह ये सर्व विस्मित भये हुए तुमको देखिरहे हैं ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ॥ बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

दोहा—रूपबड़ोबहुमुखनयन, भुजपदबहुउदरोजु ॥
देखिभयानकदाढ़बहु, व्यथितलोकसबहैजु ॥ २३ ॥

हे महाबाहो ! बहुत हैं मुख और नेत्र जिसमें तथा बहुत हैं भुज जांघों और चरण जिसमें बहुत हैं उदर जिसमें बहुत दाढों करके विकराल ऐसे तुम्हारे महत् रूपको देखिके लोक व्याकुल हैं तैसेही मैं भी व्याकुल हौं ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥ अमी च त्वां (दृष्ट्वा दिशो न जानंति शर्म न लभंते इति पूर्वेण पंचाविंशतितमेन पद्येनान्वयः) धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहाऽस्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राक

करालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना दशनां-
तरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

दोहा--पाइपुहुमिआकाशशिर, हगदीरघमुहवाय ॥
ऐसेतुमकोदेखिकै, धीरजुगयोपराय ॥ २४ ॥
कालअग्नितुमदाढअति, देखीवहुविधिभीति ॥
दिशिभूलेसुखहूगयो, अवकीजैवहुप्रीति ॥ २५ ॥
पूतसबैधृतराष्ट्रके, सबैनृपतिकेसंग ॥
कर्णद्रोणभीषमजिते, योधाहैंमोअंग ॥ २६ ॥
वेगतिहारेवदनमें, सबैपरतहैंधाय ॥
कोऊदाढनितलदलें, कोउरहैलपटाय ॥ २७ ॥

हे विष्णो नभ जो प्रकृतिसे परे परम आकाश वैकुंठ तहांपर्यंत है स्पर्श जिनका जो प्रकाशमान अनेक वर्णयुक्तरूप तथा मुख फैलाये प्रदीप्त और विशाल नेत्र ऐसे आपको देखिके जिससे कि, म व्याकुलचित्त भया हुआ धीरजको और शांतिको नहीं प्राप्त होताहौं और डाढै है कराल जिनमें और कालानलके तुल्य हैं ऐसे तुम्हारे मुखोंको देखि केही दिशाओंको नहीं जानता हौं और सुखकोभी नहीं प्राप्तहोताहौं और राजाके समूहोंकरके सहित ये सर्व धृतराष्ट्रके पुत्र तथा भीष्म द्रोण यह कर्ण और हमारे योधनमें मुख्य जो हैं तिनकरके सहित तुमको (देखि के दिशाओंको नहीं जानते हैं और सुखको नहीं प्राप्तहोते हैं "ऐसे प्रथमके पचीसवें श्लोककरके अन्वय है") ये सर्व अतिवेगको प्राप्तभये डाढै हैं कराल जिनमें ऐसे भयानक आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं कितनेक चूर्णितभये हुये मस्तकों-करके सहित तुम्हारे दातोंकी संधिनमें पटकेभये दीखते हैं इससे हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप कृपा करो याने हम सब डरते हैं इससे आप प्रथम-सरीखे सौम्यरूपको धारणकरो ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ॥ तथा तवामी नरलोकवीरा विशंति वक्राण्यभितो ज्वलंति ॥ २८ ॥

दोहा--ज्योंसरितावर्षाऋतुहिं, परतसिंधुमेंधाय ॥
त्योंनृपतुमरेवदनमें, सबैपरतहैंआय ॥ २८ ॥

जैसे नदिनके बहुतसे पानीके वेग समुद्रहीके संमुख धावते हैं तैसे ये नरलोकवीर तुम्हारे प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २८ ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति लोकास्तवापि वक्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

दोहा--ज्योंपतंगपरदीपमें, लहतआपनोनाश ॥
तैसेसबनृपपरतहैं, तेरेमुखकेपास ॥ २९ ॥

जैसे अतिवेगवंत पतंग आपके नाशके वास्ते प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करते हैं तैसे ही अतिवेगवंत ये लोग भी अपने विनाशके वास्ते तुम्हारे मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥ ३० ॥

दोहा--लीलतहौतिनकोजुलै, रसनासोलपटाय ॥
कांतिरावरीजगतको, देततापबहुभाय ॥ ३० ॥

हे विष्णो ! प्रज्वलित अपने मुखोंकरके सर्व लोगोंको सब ओरसे घेरते भये चाटे जातेहो याने खाये जातेहो तुम्हारे उग्र प्रकाश सर्व जगत्‌को अपने तेजकरिके परिपूरित करिके तपरहे हैं ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

दोहा-उग्ररूपतुमकौनहौ, मोकोकहियेदेव ॥
जान्यौचाहतहौंतुम्हैं, तुववातनिकोभेव ॥ ३१ ॥

हे देववर ! ऐसे उग्ररूप आप कौन हो सो मेरेसे कहो क्योंकि, तुम्हारी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानताहौं जो आप आदिहो उनको जाननेकी इच्छा करताहौं आप कृपाकरो तुह्मारिको नमस्कार होउ ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

दोहा-कालरूपह्वैहौंवढ्यौ, सबकोमारनहार ॥
तोविनसबयोधानिको, भपिजैहौंनिरधार ॥ ३२ ॥

ऐसे सुनिकें श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, मैं इन लोगोंके क्षयके वास्ते बढाभया काल हौं यहां इस लोगोंका संहार करनेके वास्ते प्रवर्तभयाहौं जो ये योधा तुह्मारी शत्रुसेनाओंमें खडेहैं ये सर्व तुह्मारे विना निश्चयपूर्वक न रहेंगे ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

दोहा-तातेउठिरणजीतिअरि, लैकीरतिअरुराज ॥
मैंहनिराखेहैंनृपति, एसबतेरेकाज ॥ ३३ ॥

हे सव्यसाचिन् ! हे अर्जुन ! जिससे किये मरहींगे तिससे तुम उठो

यश लेउ शत्रुनको जीतिके समृद्ध राज्यको भोगो प्रथमहि ये सब मैने माररखेहैं तुम तो निमित्तमात्र होउ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

दोहा—भीषमद्रोणजयद्रथों, कर्णआदिजेऔर ॥
भयतजिअर्जुनयुद्धकरि, अरिनमारुयाठौर ॥ ३४ ॥

द्रोण और भीष्म और जयद्रथ और कर्ण तथा औरभी शूरवीर इनको मेरे मारेभये इनको तुम मारो मत दुःखित होउ रणमें शत्रुनको जीतोगे युद्धकरो ॥ ३४ ॥

संजय उवाच ॥

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ॥ नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

दोहा—वचनसुनेश्रीकृष्णके, कांपीअर्जुनदेह ॥
तबप्रभुकोपालागिकै, बोलोवचनसुनेह ॥ ३५ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि, किरीटी जो अर्जुन सो श्रीकृष्णके इतने वचन सुनिके कांपते कांपते हाथ जोड़ेभये नमस्कार करके फिरभी भयभीत प्रणाम करके गद्गदकंठयुक्त श्रीकृष्णसे बोलतेभये ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥ रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

दोहा-सबजगकोयहयुक्ति है, तुम्हैंरहोअनुरागि ॥
सिद्धनवततोकोसदा, राक्षसजातडुभागि ॥ ३६ ॥

अर्जुन कहते हैं कि, हे हृषीकेश ! तुम्हारी उत्तम कीर्तिकरके जगत् आनंदित होता है और आपसे प्रीति करता है राक्षस भयको प्राप्तभयेहुये सर्वदिशाओंको भागते हैं और सर्व सिद्धसमूह नमस्कार करते हैं सो यह योग्यही है ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनंत देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

दोहा-क्योंननवौं तुमकोजुहौं, ब्रह्माकेकरतार ॥
जगतईशअक्षरअनँत, तुमसबतेहौपार ॥ ३७ ॥

हे महात्मन् ब्रह्मासेभी बडे आदिकर्त्ता जो आप तिन तुमको वे क्यों न नमन करें अर्थात् करेंहींकरें हे अनंत ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो अक्षर याने जीवतत्व सत् जो कार्य स्थूलप्रकृति असत् जो सूक्ष्मप्रकृति कारण तत्पर जो शुद्ध आत्मा सो सब आप हो याने सबके अंतर्यामी हो ॥ ३७ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

दोहा-पुरुषपुरातनआदिहौ, तुमहीजगतनिधान ॥
तुमयहसबजगविस्तरयो, जानततुमहीज्ञान ॥ ३८ ॥

आप आदिदेव पुराण पुरुष हो तुम इस विश्वके परम आधार हो इसके जाननेवाले और जानने योग्य और इसके सर्वोत्तम वासस्थान हो हे अनंतरूप ! यह विश्व ! तुमकरके व्याप्त है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ॥ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

दोहा—वायुप्रजापतिअग्नियम, वरुणचंदतुमरूप ॥
वारवारसहसनिसतनि, प्रनवततोहिंअनूप ॥ ३९ ॥

पवन अग्नि यम वरुण चंद्र पितामह और प्रपितामह तुम हो इससे तुमको हजारोंवार नमोनमः होउ फिर और फिरभी तुमको नमोनमः ३९॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

दोहा—आगेतेतोकोनवत, पाछेहूजुअनंत ॥
सर्वदिशनितुमतिहिंनवतु, अमितप्रबलभगवंत ॥ ४० ॥

हे सर्व! तुमको अगाड़ी से और पिछाड़ी से नमस्कार और तुमको सब ओरसेभी नमस्कार होउ अनंत बल और अमित परीक्रम तुम सर्व में व्यापक हो इसीसे तुम सर्वरूप हो ॥ ४० ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

दोहा—मित्रजानिहोंमैंकही, सोसुनियेहोदेव ॥
जानोंकहाजुबापुरो, तुममहिमाकोभेव ॥ ४१ ॥

भोजनशैनविहारमें, कियेअनादरभाय ॥
तेजुक्षमासबकीजिये, प्रभुजूकेशवराय ॥ ४२ ॥

हे अच्युत ! तुम्हारे महिमाको और इस विश्वरूपको न जाननेवाला जो मैं तिस मैंने प्रमादसे अथवा प्रणयसे भी सखा ऐसे मानिके हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! ऐसे हठसे जो कहाहोयँ और क्रीडा शयन आसन तथा भोजनकालमें अकेलो अथवा और उन सखोंके संमुख इसीके वास्ते जो आपका अपमान कियाहोयँ सो परमितिरहित जो आप तिन आपसे मैं क्षमा कराता हौं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

दोहा-पिताजुतुमसंसारके, तुमहिंगुरूहोईश ॥
तुमपटतरकोउनाहिनें, करैकौनतोरीश ॥ ४३ ॥
कौनकरतपरनामको, देहिअगिनिमेंडारि ॥
पितासहितज्योंपुत्रको, मोअपराधनिवारि ॥ ४४ ॥

हे सर्वोत्तम प्रभाव ! आप इस चराचर लोकके पिताहो और सर्व गुरुनसे बडे गुरुहो इसीसे पूज्यहो तीनों लोकमेंभी आप समान और नहीं है तौ कहांसे और अधिक होयँगा तिससे मैं शरीरको पृथिवीपर धारणकियेभये प्रणामकरके ईश्वर इसीसे स्तुतिकरनेयोग्य आपको प्रसन्नकरौं हौं हे देव ! पुत्रके प्रियके वास्ते पिता जैसे सखाके प्रियके वास्ते सखा जैसे ऐसे मेरे प्रिय आप हो सो मेरे प्यारके वास्ते मेरे अपराध सहनेको योग्य हो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥ तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

दोहा–रूपलख्योयहरावरो, मोहिंहर्षभयहोय ॥
पहिलोरूपदिखाइये, हाजीवतजोहोय ॥ ४५ ॥

जो रूप मैंने और किसीनेभी प्रथम नहीं देखाथा उसको देखिके चकित भयाहौं और भयसें मेरा मन व्याकुल भया है हे देव ! मेरेको वही प्रथमका रूप दिखावो हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मेरेपर प्रसन्न होउ ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ॥ तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥ ४६ ॥

दोहा–मुकुटविराजतशीशपर, शंखचक्रतुमहाथ ॥
यहिविधिमोहिंदिखाइये, प्रभुहोतुमजगनाथ ॥ १ ॥
चारिभुजाधरिप्रगटकै, मोकोदरशनदेहु ॥
तुममूरतिजुअनंतहै, मोकोवासेनेहु ॥ २ ॥ ४६ ॥

हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्त्ते ! मैं वैसाही किरीटयुक्त गदायुक्त चक्रहस्त आपको देखनेको चाहताहौं इसवास्ते उसही चतुर्भुज रूपकरके युक्त होउ ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

दोहा–तोहिंदिखायेरूपमैं, अतिप्रसन्नचितहोय ॥
आदिअन्तअरुतेजमय, देखिसकैनहिंकोय ॥ ४७ ॥

ऐसी अर्जुनकी प्रार्थना सुनिके भगवान् बोले कि, हे अर्जुन ! जो तेजोमय विश्वरूप अंतरहित सबका आदि तुम्हारे विना और किसीने नहीं प्रथम देखा सो यह पर रूप प्रसन्न मैंने आपके सत्यसंकल्परूप योगसे तुमको दिखायाँ ॥ ४७ ॥

न वेदयज्ञाऽध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

दोहा–वेदयज्ञअरुतपक्रिया, औरकरैहूदान ॥
ऐसेमेरेरूपको, तोविनलखैनआन ॥ ४८ ॥

हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठ वीर ! ऐसे रूपको मैं इस मनुष्यलोकमें तुह्मारे विन औरको न वेदपाठ यज्ञ और मंत्रजपकरके न दानकरके और न योगक्रियाकरके न उग्र तपकरके दिखानेको योग्यहों ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम् ॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेवमे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

दोहा–रूपभयानकदेखिकै, तूंजिनजियहिडराहि ॥
अबभयकोतूडारिदे, मेरेरूपहिचाहि ॥ ४९ ॥

ऐसे घोर मेरे इस रूपको देखिके तुमको व्यथा भतिहोउ और मोह भावभी भति होउ भयरहित प्रसन्नमन तुम वही यह मेरा रूप फिर देखो ॥ ४९ ॥

संजय उवाच ॥

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास

भूयः ॥ आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

दोहा—अर्जुनसोंऐसेकही, पहिलोवपुप्रगटाय ॥
समाधानबहुविधिकियो, भयतेलयोबचाय ॥ ५० ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि, वसुदेवपुत्र कृष्ण ऐसे अर्जुनको कहिके वैसाही पूर्ववत् आपके रूपको फिर दिखातेभये और जो बडेशरीरयुक्तथे सो सौम्यरूप होके फिर भयभीत अर्जुनको आश्वासते भये ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

दोहा—रूपअनूपजुतुमधरचो, तारूपहिहोंदेखि ॥
प्रकृतिलही में आपनी, भयोसचेतविशेखि ॥ ५१ ॥

तब अर्जुनबोले कि, हे जनार्दन ! तुह्मारे इस सौम्य मानुष रूपको देखिके अब सचेत भयाहुआ आपके स्वभावको प्राप्तभया सावधान हौं ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

दोहा—देख्योपरतनरूपयह, जोतैंदेख्योमित्त ॥
तासरूपकोंदेवता, देख्योचाहतनित्त ॥ ५२ ॥

अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्ण बोले कि, हे अर्जुन ! जो अतिदुर्लभदर्शन इस मेरे रूपको तुम देखतेभये इस रूपके देवताभी निरंतर दर्शनाभिलाषी रहाकरते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥

शक्यं एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

दोहा–दानयज्ञतपविधिकिये, सोहिनदेखेकोय ॥
विनश्रमपारथतूअवै, मोकोंरह्योजुजोय ॥ ५३ ॥
भक्तिअनन्यजोकोउकरै, सोदेखैयाभाय ॥
नीकेजानेमोहिसों, मोमेंरहैसमाय ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे मेरेको तुम देखतेभये इस प्रकारका मैं न वेदोंकरके न तपकरके न दानकरके और न यज्ञकरके देखनेको सकताहौं क्योंकि, हे परंतप ! ऐसा मैं अनन्य भक्तिकरके निश्चयपूर्वक जाननेको और देखनेको ममीपप्राप्त होनेको भी सकता हौं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–मोनिमित्तकर्मनिकरै, सजैभक्तितजिऔर ॥
वैरनकाहूसोंधरै, मोमेंलहैसुठौर ॥ ५५ ॥

हे पांडव ! जो मनुष्य मेरेनिमित्त लौकिक वैदिक सर्व कर्म करता है मेरेहीको सर्वसे अतिउत्तम मान रहाहै मेराही भक्तहै मेरे संबंध विना और संगोंकरके रहितहै और सर्वभूतप्राणिनमें निर्वैर है सो मेरेको प्राप्तहोताहै ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यामेकादशोऽध्यायप्रवाहः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

दोहा—जेसेवततुमकोसदा, करिकर्मनिकेसाज ॥
अक्षरब्रह्महिंजेभजत, बड़ोकौनकहिंराज ॥ १ ॥

ऐसे प्रथम आत्मज्ञानकी महिमा श्रीकृष्णजीने वर्णन की फिर भक्तिहीसे जानने देखनेमें और प्राप्तहोनेमें आताहौं सो दोनोंको सुनिके अर्जुन पूंछते हैं कि, निरंतर भक्तियोगयुक्तभयेहुए जो भक्त ऐसे जो आप पीछे अध्यायके अंतमें कहा तैसे आपकी उपासनाकरते हैं और जो इंद्रियोंके अदृश अक्षर याने आत्मस्वरूप उसकी उपासना करते हैं उन दोनोंमें अतिश्रेष्ठ कौन है याने आत्मज्ञानी श्रेष्ठहै कि, आपके उपासक श्रेष्ठहैं सोकहो॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ॥
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

दोहा—योमोमेंमनराखिकै, सेवतसेवकभाय ॥
बहुश्रद्धासोंजोयजतु, सोसबतेअधिकाय ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, जो निरंतर भक्तियोगयुक्त मेरेमें मनको लगायके परम श्रद्धाकरके युक्त मेरेको भजतेहैं वे योगिनेमें श्रेष्ठ मेरे मान्यहैं ॥ २ ॥

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥ सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ संनियम्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥ ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्ता-

सक्तचेतसाम् ॥ अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देह-
वद्भिरवाप्यते ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

दोहा-जेध्यावतहैंअक्षरहिं, जेनहिंप्रगटसुरूप ॥
व्यापतमायातेपरे, अजअनंतमोरूप ॥ ३ ॥
सवइंद्रियनकोरोकिकै, सवकोलखतसमान ॥
सवजीवनकोहितकरत, मोहिंमिलतकरिज्ञान ॥ ४ ॥
तिन्हैंक्लेशवहुहोतहै, अलखलगायेचित्त ॥
रूपरेखजाकेनसो, दुखसोंलहियेमित्त ॥ ५ ॥

जे कोई इंद्रियसमूहको नियममें राखिके सर्वत्र समबुद्धि सर्वभूतोंके हितमें रतहुयेभये अनिर्देश्य याने देवादिशरीरोंकरके कहनेमें न आवे ऐसे अव्यक्त याने इंद्रियगोचरनहीं " सर्वत्रगं " याने, सर्वत्र देवादिशरीरोंमें रह-नेवाला अचिंत्य याने ध्यानमें न आवे और कूटस्थ याने सर्वत्र एकसा रहे अचल याने स्वस्वरूपहीमें स्थिर ईसीसे नित्य ऐसे अक्षरको याने आत्मस्व-रूपको भजतेहैं याने आत्मस्वरूपहीका अनुसंधान करते हैं वेभी मेरे-हीको प्राप्तहोतेहैं परंतु आत्मज्ञानि दशा दुःखपूर्वक देहधारिनकरके प्राप्तहोताहै इससे उन अव्यक्तासक्तचित्तनको क्लेश अतिशयहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

दोहा-जेसवकर्मनिकरतहैं, अर्पतमोकोजानि ॥
ध्यावतकेवलभक्तिसे, बहुउपासनाठानि ॥ ६ ॥
मृत्युसहितभवउदधितें, वाकोकरतउधार ॥
मोमेंचितराख्योउनन, बहुभाइननिर्धार ॥ ७ ॥

हे पृथापुत्र ! जो कोई सर्वकर्मोंको मेरेमें अर्पणकरके मेरेही शरण भयेहुये अनंन्य भक्तियोगकरके मेरेको ध्यावते पूजते हैं ऐसे मेरेमें लगायाहै चित्त जिनने उनका मैं थोड़ेही कालमें मृत्युदुःखरूप संसारसागरसे उद्धारकर्त्ता होउंगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ॥
निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

दोहा--तातेअर्जुनबुद्धिमन, मोही में तू राखि ॥
याआगेमोदेहिमें, वसिहैतूअभिलाखि ॥ ८ ॥

इससे तुम मेरेहीमें मनको लगावो मेरेहीमें बुद्धिको लगावो इस मन, बुद्धिलगायेपीछे मेरेहीं समीपरहोगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

दोहा--जोतूमोमेंनहिंसकै, चितअपनोठहराय ॥
करिअभ्यासमोमिलनको, मोहिनिरंतरध्याय ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित् मेरेमें चित्तको स्थिर समाधानकरनेको नहीं सकतेहो तो अभ्यासयोगकरके मेरे प्राप्तहोनेको इच्छाते रहो ॥ ९ ॥

अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव ॥
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

दोहा—जोअभ्यासनकरिसकै, कर्मसमर्प्योमोहिं ॥
मेरेकर्मनिकरतहूं, सिद्धिहोइगीतोहिं ॥ १० ॥

जो अभ्यासमेंभी असमर्थहोउ तो मेरे पूजनादिक कर्मोंमें मुख्य स्थिर-होउ मेरे अर्थभी कर्मोंको करतेकरते मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होवोगे ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

दोहा—यहैनजोतूकरिसकै, मोशरणहिअनुरागि ॥
सबकर्मनकेफलनिको, अर्जुनदेतूत्यागि ॥ ११ ॥

जोकि, तुम यहभी करनेको अशक्तहोउ तो मनको सावधान किये भये मेरे भक्तियोगका आश्रय कियेभये सर्व कर्मफलका त्याग करो॥ ११ ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२ ॥

दोहा—ज्ञानभलोअभ्यासते, तातेध्यानविशेषि ॥
फलत्यागेताते भलो, तातेशांतिहिलेखि ॥ १२ ॥

जिससे कि, अभ्याससे कल्याणकारक ज्ञान होताहै ज्ञानसे विचार होता है विचारसे कर्मफलत्याग होताहै कर्मफलके त्यागसे फिरि शांति याने संसारसे वैराग्यहोताहै ॥ १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

दोहा—द्वेषनकाहूसोंकरै, मित्रभाइकरनाजु ॥
अहंकारममतातजै, दुखसुखसमह्वैताजु ॥ १३ ॥
सदारहैसंतोषमें, मनुराखैनिजहाथ ॥
प्राणबुद्धिमोमेंधरै, वहप्यारोमोसाथ ॥ १४ ॥

जो सर्वभूतोंको न द्वेषकारक होय और सबका मित्र होय और दयालु भी होय ममतारहित अहंकाररहित सुखदुःखमें सम क्षमावान् यथालाभसं-

तुष्ट निरंतर भक्तियोगवान् जितचित्त दृढनिश्चय मेरेमें मन, बुद्धिको लगाये होइ सो मेरा भक्त मेरेको प्रिय है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

दोहा--वहकाहूतेनहिंडरै, भयऔरहिनहिंदेय ॥
हर्षक्रोधदोऊतजै, सोमोकोहरिलेय ॥ १५ ॥

जिससे कोईभी जंतु त्रास नपावै और जो किसीसेभी दुःख न पावै और जो हर्ष, ईर्षा, भय और उद्वेगोंकरके रहितहोय सो मेरा प्रिय है ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

दोहा--चाहनकाहूकीकरै, रहैपुनीतउदास ॥
सबआरंभनकोतजै, रहैसुमेरेपास ॥ १६ ॥

जो मनुष्य मेरे संबंधविना सर्वत्र अपेक्षारहित शुचि याने शुद्धआहारी और बाहेर मृत्तिका जलादिकरके और अंदरचित्तकी शुद्धता करके पवित्र स्वधर्मअनुष्ठानमें चतुर शत्रुमित्रादिरहित शास्त्रोक्तकर्म करनेमें व्यथारहित सर्व आरंभोंके फल और ममताकात्यागी ऐसा मेरा भक्त सो मेरेको प्रिय है ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति नद्वेष्टि नशोचति नकांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

दोहा--प्रियलहिआनंदितनहीं, अप्रियलहैनद्वेष ॥
शोचऽरुइच्छानहिंकरै, तजिशुभअशुभविशेष ॥ १७ ॥

जो सुखकारक वस्तु पायके न हर्ष दुःखकारक पायके न द्वेषकरै शोकनिमित्तमें न शोककरै और हर्षकारककी न इच्छाकरै जो शुभाशुभ कर्मफलोंका त्यागीहुआभया भक्त होय सो मेरे को प्रिय है ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः॥ शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः॥ तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्॥ अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ १८॥ १९॥

दोहा–शत्रुमित्रकोसमलखै, सवैमानअपमान॥
शीतउष्णसुखदुखतजै, संगकरैनहिंआन॥ १८॥
स्तुतिनिंदादुहुएकसी, गहैमौनसंतोष॥
वरुनकरैथिरमतिरहै, लहैमुक्तिसोमोष॥ १९॥

शत्रु और मित्रमें सम तैसा ही मान अपमानमें और शीतउष्ण सुख-दुःखोंमें सम होय विषयोंकी आसक्तिरहित निंदा स्तुति तुल्यमानै मित-भाषी जो स्वतःप्राप्तहोइ ईसीकरके संतुष्ट घरमें अनासक्त थिरबुद्धि भक्ति-मान् मनुष्य मेरा प्रिय है॥ १८॥ १९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्य्युपासते॥ श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥ २०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

दोहा–धर्मअमृतजोमैंकह्यो, ताहिजुसेवैकोय॥
श्रद्धायुतमेरोभगत, मोहिंसुप्यारोहोय॥ २०॥

जो कोई श्रद्धा धारेभये मेरेहीको सर्वोत्तम जाननेवाले भक्त इस यथोक्त धर्मरूप अमृतको याने मेरेमें मन लगाना इत्यादि धर्मरूप अमृतको सेवते हैं वे मनुष्य मेरे अतिशय प्रिय हैं॥ २०॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां द्वादशोऽध्यायप्रवाहः॥ १२॥

इति द्वितीयं षट्कं समाप्तम्॥

अथ तृतीयं षट्कम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

दोहा–क्षेत्रकहतहैदेहको, अर्जुनज्ञानीलोय ॥
जानतहौंजोदेहको, सोक्षेत्रज्ञजुहोय ॥ १ ॥

प्रथमके छह अध्यायोंमें ईश्वरप्राप्तिका उपायभूत उपासना और उपासनाका अंगभूत आत्मस्वरूप ज्ञानकहा और उस आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोगकर्मयोगनिष्ठासे होतीहै ऐसे कहा ॥ मध्यके छह अध्यायोंमें परमात्मस्वरूपका यथार्थज्ञान और उसके महात्म्य ज्ञानपूर्वक उपासना जिस उपासनाको भक्तिभी कहते हैं सो कहते भये ॥ अब अंतके छह अध्यायोंमें प्रकृतिपुरुषका निरूपण और इस प्रपंचका प्रकृतिपुरुषसंयोगसे होना कहेंगे और प्रथम बारह अध्यायोंमें जो परमात्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय और कर्मज्ञानभक्तिस्वरूप और इनके ग्रहणके न्यारेन्यारे प्रकार कहेंगे ॥ तहां तेरह अध्यायमें देह और आत्माके स्वरूप और आत्मस्वरूपप्राप्तिका उपाय तथा प्रकृतिमुक्त आत्माका स्वरूप और उसके प्रकृतिसंबंधका कारण और प्रकृतिपुरुषविवेकका अनुसंधानप्रकार कहेंगे ॥ श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि; हे कुंतिपुत्र ! यह शरीर क्षेत्र ऐसा कहाहै जो इसको जानताहै उसको देहात्मज्ञानिजन क्षेत्रज्ञ ऐसे कहतेहैं याने देह क्षेत्र और आत्मा क्षेत्रज्ञहै ॥ १ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

दोहा–सोममरूपसुआतमा, वसतुसबनिकीदेह ॥
यहैज्ञानकोजानिबो, मेरेमतहैयेह ॥ २ ॥

हे भारत ! सर्वक्षेत्रोंमें याने सर्व देहोंमें क्षेत्रज्ञ जो जीव और मैं जो पर-मात्मा तिस मेरेकोभी जानो जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान याने इनका विवेक ज्ञानहे सो ज्ञान मेरेको अंगीकार है ॥ यहां जो शरीरोंमें आ-त्मापरमात्मा दोनोंकहे उसपर श्रुतिप्रमाण है सो यह " द्वासुपर्णासयुजा-सखाया समानंवृक्षंपरिषस्वजाते ॥ तयोरेकः पिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभि-चाकशीति ॥ " अर्थ–दो पक्षि संगसंग रहनेवाले परस्पर सखा एकसदृश वृक्षपर रहते हैं उनमेंसे एक उसवृक्षके स्वादु फल खाता है दूसरा खाए विना प्रकाशता है ॥ अर्थात् ईश्वर और जीव सदा संगरहते हैं परस्पर सखा एकसरीखे देहमें रहते हैं तिनमें जीवशरीरजन्यकर्मफलोंका भोक्ता है और ईश्वर साक्षिमात्र प्रकाशकहै दूसरा यह अर्थ होता है कि, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ मैंहीं हौं अर्थात् इन दोनोंका अंतर्यामी हौं तोभी देहांतर्यामी जीव जीवांतर्यामी परमात्मा ऐसेभी वही अर्थ सिद्धभया जो यहां जीव और ईश्वर एकही कहते हैं उनको " उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः " यहां अर्थकी पंचाइत होनेकी अंतर्यामित्वमें तौ " ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ नतदस्तिविनायत्स्यान्मया भूतं चराचरम् " और यस्यात्मा शरीरंयआत्मनितिष्ठन्यआत्मानमंतरोयमयतियमात्मानवेदसते आत्माअमृत" इत्यादिक श्रुति भी प्रमाण हैं ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

दोहा–क्षेत्रजहांतेहैभयो, जोहैजैसेभाय ॥
जेविकारयामांझहैं, कहौंसंक्षेपसुनाय ॥ ३ ॥

सो क्षेत्र जिसद्रव्यका है और जिनके आश्रयभूत है और जिनविका-

रोंकरके और जिसप्रयोजनकेवास्ते उत्पन्न भया है और जिसरूपसे वर्तमान है और वह क्षेत्रज्ञ जो है याने जैसे रूपयुक्त है और जैसे प्रभाववाला है सो संक्षेपकरके मेरेसे सुनो ॥ ३ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

दोहा--ऋषिनकहेबहुभांतिजे, औरनिहूँयोंभाषि ॥
हेतुवादनिश्चयजुकर, कह्योउपनिषतसाखि ॥ ४ ॥

वह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका यथास्वरूप बहुत प्रकारकरके पराशरादिक ऋषिननें और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ऐसे अनेक प्रकार वेदोंनें और ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले जो ब्रह्मसूत्र याने व्यासकृत शारीरक सूत्ररूप पदोंने जो कारणयुक्त निश्चय याने सिद्धांतकरनेवाले उननेभी क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपको न्यारान्यारा कहा है सो मैं संक्षेपसे कहौंगा तुम मेरेसे सुनो ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

दोहा--महाभूतिअहँकारबुधि, अरुमायाहूँजानि ॥
एकादशइंद्रियविषय, पंचअगोचरमानि ॥ ५ ॥
इच्छासुखदुखचेतना, द्वेषधीरतादेह ॥
यहजुकह्योसंक्षेपसों, क्षेत्रजानिसुखलेह ॥ ६ ॥

पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि याने महत्तत्व और अव्यक्त याने सूक्ष्मरूप प्रकृति ये क्षेत्रके उत्पत्तिकारक द्रव्य हैं अब विकार यानें कार्य कहते हैं दश और एक ऐसे ग्यारह इंद्रियां हैं जैसे कि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका ये पांच ज्ञान इंद्रियां वाणी, हाथ, पाय, गुदा और लिंग ये

पांच कर्म इंद्रियां एक मन ऐसे ग्यारह इंद्रियां और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांचों इंद्रियोंके विषय हैं ये सोलह विकार हैं इच्छा, द्वेष सुख, दुःख, संघात यानि सविकारभूत समूह चेतना जो ज्ञानशक्ति धृति जो धीरज ऐसे संक्षेपसे विकारसहित यह क्षेत्र कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

दोहा-क्षमासरलअरुदंभतजि, हिंसामदअभिमान ॥
गुरुसेवासंयमकरत, स्थिरतासोचप्रधान ॥ ७ ॥

अब क्षेत्रकार्योंमें आत्मज्ञानसाधनके वास्ते ग्रहण करनेके गुण कहते हैं जैसे कि, श्रेष्ठ जनोंमें मानका न चाहना लोक दिखानेको धर्म, कर्म, रूप दंभ न करना परपीडारूप हिंसाका न करना अपनेसे बलहीनके अपराध सहनरूप क्षमा राखना सर्वसे सरलस्वभाव रहना मन, वचन, कर्म करके गुरुकी सेवा करना मृत्तिका जलादिसे बाहर और शुद्धचित्तसे ईश्वरस्मरण रूप अंतर ऐसा शोच करना आत्मज्ञानमें स्थिर रहना मनको सर्वत्रसे निवारणकरके ईश्वरमें लगाना ॥ ७ ॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

दोहा-विषयनिसोंवैराग्यधरि, तजेरहैअहँकार ॥
जन्ममृत्युदुखसुखजरा, व्याधिदोषनिरधार ॥ ८ ॥

इंद्रियविषयोंमें गुणबुद्धि न करना और देहमें और देहसंबंधी पदार्थोंमें अहंबुद्धि न करना जन्म मृत्यु वृद्धावस्था अनेक रोग ऐसे शरीरमें इन दुःखरूप दोषोंका विचारना ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

दोहा-नेहनपुत्रकलत्रसों, तादुखदुखीनहोइ ॥
चित्तमेंधरैसमानता, बुरेभलेकोखोइ ॥ ९ ॥

आत्माविना अन्यत्र आसक्तिरहित पुत्र स्त्री और घर इत्यादिकोंमें अति मिलाप न रखनां और इष्ट और अनिष्टवस्तुकी प्राप्तिमें निरंतर समचित्त रहना ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

दोहा-अटलभक्तिमोमेंधरै, सबकोआतमजानि ॥
रहैसदाएकांतमें, तजैसभासनमानि ॥ १० ॥

मेरेमें अनन्ययोग करके अखंड भक्ति एकांत रहनेमें प्रीति जनसभामें अप्रीति ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

दोहा-अध्यातमज्ञानहिंधरे, तत्त्वज्ञानकोदेखि ॥
यहसबजोकछुमैंकह्यौं, यहैज्ञानअवरेखि ॥ ११ ॥

आत्मसंबंधी ज्ञानकी नित्यतां तत्त्वज्ञानके प्रयोजनका विचारनां ऐसे यह ज्ञान कहा जो इससे अन्यथा है सो अज्ञान है ॥ ११ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

दोहा-कहोंअद्भुतसमजानिवो, जातेमुक्तिजुहोइ ॥
कारनकारजतेपरे, आदिब्रह्मकोजोइ ॥ १२ ॥

जो जाननेयोग्य है सो कहतां हौं जिसको जानिके मोक्षको पाता है वह ऐसा है कि, अनादि याने जन्मरहित है मत्पर याने उससे श्रेष्ठ मैंही हौं वह केवल मेरे स्वाधीन है ब्रह्म याने प्रकृतिमुक्त शुद्ध चैतन्य जीवात्मा है

वह आत्मा न सत् न असत् कहनेमें आताहै याने कार्यकारण दोनों अवस्थाओं करके रहितहै ॥ १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

दोहा-सर्वत्रहिकरचरणशिर, त्योंहीमुखदृगकान ॥
व्यापिरह्यौसबजगतमैं, मोहिंदशोंदिशिजान ॥ १३ ॥

वह जीवात्मा सब ओरसे हाथपायवाला है सब ओरसे नेत्र मस्तक और मुखवाला है सब ओरसे कानवाला है लोकमें वस्तुमात्रमें व्यापकहोके रहताहै यह स्वरूप मुक्तजीवका कहा मुक्तदशामें जीवकी समता परमात्माके सरीखी है सो यहां गीतामें भी कहेंगे "इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः" सूत्रभी है "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" और "तथाविद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति" ऐसें जो परमात्माकी समता कही है तौ परमात्मासरीखा स्वरूप होनेमें क्या शंका है ॥ १३ ॥

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ॥
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

दोहा-सबविषयनितेहै रहित, सबताकोआभास ॥
संगविनासबकोधरै, निर्गुणगुणनिप्रकास ॥ १४ ॥

सर्व इंद्रियनकी वृत्तिनकरकेभी विषयनको जाननेमें समर्थ है और आप स्वभावसे सर्वइंद्रियोंकरके रहितभी हैं याने इंद्रियनकी वृत्तिनविनाभी विषयनको जाननेमें समर्थ हैं आप स्वयं देवादिशरीरोंमें आसक्त नहीं है और सर्वदेवादिशरीरोंका धारणकरनेवाला है सत्त्वादिगुणरहित और गुणोंका भोगनेवाला है ॥ १४ ॥

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥१५॥

दोहा–जंतुजितेचरहूँअचर, अंतरबाहिरसोइ ॥
सबते दूरिसुनिकटहै, सुक्षमलखैनकोइ ॥ १५ ॥

वह आत्मा मुक्तावस्थामें पृथिव्यादिभूतोंके बाहर और बद्धावस्थामें भीतर रहताहै स्वयं आप अचर है और देहसंयोगसे चर होताहै सूक्ष्म है इससे जाननेयोग्य नहीं है वह अज्ञानिनको दूर है और ज्ञानिनको समीप है १५॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ॥
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

दोहा–तामेंभेदकछूनहीं, सबमेंरहतविभाग ॥
उपजावतनाशतसबनि, पालतकरिअनुराग ॥ १६ ॥

वह पृथिव्यादि भूतविकार देवादि शरीरोंमें एकरस रहताहै और अज्ञानिनको देवादिशरीरोंमें देवादिशरीरोंके सदृश दीखताहै कि, यह देव यह मनुष्य पशु इत्यादिक विभक्तसरीखा स्थित दीखताहै और सर्वभूतोंका पोषक है और अन्नादिक भूतोंका भक्षक है देहरूपसे आहार करनेवाला है और उसी अन्नादिविकारसे उत्पत्तिकर्ताभी है ऐसे जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

दोहा–जोतिनहूकीजोतिहै, अंधकारतेपार ॥
ज्ञानजानिवोहीयमें, सबकेहैनिरधार ॥ १७ ॥

वह सूर्यादिकज्योतिनकोभी प्रकाशक है सूक्ष्मकारणरूप प्रकृतिसे परे याने न्यारा कहाताहै ज्ञानरूप जाननेयोग्य ज्ञानसे प्राप्तहोने योग्य सर्वके हृदयमें रहताहै याने सर्व देव मनुष्य पशुपक्ष्यादि शरीरोंके हृदयमें रहताहै ॥ १७ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥

मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

दोहा–क्षेत्रज्ञानअरुज्ञेयमें, तोकोदयोवताइ ॥
इनकोजानैजोभगत, लहैसुमेरोदाइ ॥ १८ ॥

ऐसे "महाभूतान्यहंकारः" यहांसे लेके, "संघातश्चेतनाधृतिः" यहां पर्यंत क्षेत्र कहा तथा "अमानित्वं" यहांसे लेके "तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं" यहांपर्यंत ज्ञान कहा और "अनादिमत्परं" यहांसे लेके "हृदि सर्वस्य विष्ठितं" यहांपर्यंत ज्ञेय याने जाननेयोग्य आत्मस्वरूप कहा ऐसे यह संक्षेपसे कहा इतनोंको जांनिके मेरे भक्तहोके मेरेसरीखे स्वरूपको प्राप्तहोय ॥ १८ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

दोहा–मायापुरुषअनादिहैं, अर्जुनदोऊजान ॥
गुणविकारसबजेभये, मायाहीतेमान ॥ १९ ॥

प्रकृतिको और पुरुषको याने जीवको इन दोनोंकोभी अनादि याने सनातन जांनो जो बंधनकारक इच्छा द्वेष सुख दुःखादिकविकार उनको और मोक्षकारक अमानित्व अदंभित्व गुण उनको निश्चयपूर्वक प्रकृतिसंभव जांनो अर्थात् इच्छादिविकारयुक्त प्रकृति पुरुषको बंधनकारक और अमानित्वगुणयुक्त मोक्षदायक होती है ॥ १९ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

दोहा–कारजकारणकरतऊ, मायाइनकोहेत ॥
दुखअरुसुखकेभोगको, वहीपुरुषगहिलेत ॥ २० ॥

अब एकसंग रहेभये प्रकृतिपुरुषोंके कार्यभेद कहते हैं जैसे कि, कार्य

जो प्रकृतिपरिणाम देहकारण मनसहितइंद्रियां इनका व्यापार करानेमें कारण प्रकृति कही है सुखदुःखोंके भोक्तापनेमें कारण पुरुष कहाहै याने भोगसाधनकर्मकी आश्रय प्रकृतिपरिणाम और पुरुषयुक्तदेह तथा सुखादिभोक्तृत्व आश्रय पुरुष है ॥ २० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान् ॥
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिर्जन्मसु ॥ २१ ॥

दोहा—पुरुषप्रकृतिमेंबैठिके, करतविषयकोभोग ॥
ऊँचेनीचेजन्मको, कारणगुणसंयोग ॥ २१ ॥

जिसवास्ते कि, यह पुरुष प्रकृतिहीमें रहाभया प्रकृतिजन्यगुणोंको भोगता है तिसीसे इसका ऊंचनीचयोनिनमें जन्म लेनेमें कारण प्रकृति गुणोंका याने सत्त्वादि गुणोंका संगही है अर्थात् उन गुणनकी आसक्तिहीसे ऊंच नीच जन्म होते हैं ॥ २१ ॥

उपद्रष्टाऽनुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः २२॥

दोहा—परमात्माकोदेहतें, न्यारोजानतसोइ ॥
साक्षीभरताभोगता, ईश्वरनिर्गुणहोइ ॥ २२ ॥

इस देहमें यह पुरुष देखनेवाला है याने चौकसी करनेवाला है और अनुमोदन देनेवाला याने सलाह देनेवाला है और इस देहका पोषनेवाला है और भोगनेवाला है और इसका महेश्वर है जैसे कि, इस देहमें ईश्वर इंद्रिय मन इत्यादि हैं उनकाभी ईश्वर है ऐसे इस देहसे यह जीव न्याराभी है तौभी अज्ञानसे केवल यहदेह ऐसा कहाताहै ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

दोहा-जोकोऊऐसेलखै, पुरुषप्रकृतिगुणभाइ ॥
सोक्योंहूजगमेंरहो, बहुरिनउपजैआइ ॥ २३ ॥

जो ऐसे इस जीवको और गुणोंकरके सहित प्रकृतिको जानता है सो सर्व प्रकारसे संसारमें रहताहै तोभी फिर नहीं उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥
अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ॥
तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

दोहा-देहमाँझआतमलखत, कोऊकीयेध्यान ॥
सांख्ययोगअरुकर्मकरि, लखतकोउसज्ञान ॥ २४ ॥
जेऐसेनहिंजानहीं, औरनिपैसुनिलेत ॥
ममउपासनाकरतहैं, भवभयमृत्युतरेत ॥ २५ ॥

कितनेक पुरुष आपके अंतः करणमें बुद्धिसे विचारकरके इस जीवात्माको जानतेहैं और कितनेक सांख्ययोगकरके जानतेहैं और और कितनेक कर्मयोग करके याने ईश्वरार्पण कर्म करते करते जानतेहैं और कितनेक और ऐसे नहीं जानतेभये दूसरोंसे सुनिके उपासना करतेहैं याने सुनिके प्रथमसरीखे उपाय करके जानतेहैं और कितनेक केवल श्रद्धायुक्त श्रवणही करते रहतेहैं तो वेभी संसारको तैरतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्वं स्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

दोहा-जितेजीवयाजगतमें, थावरजंगमहोत ॥
क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञमैं, तेसबलहतउदोत ॥ २६ ॥

हे भरतवंशिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जितना कुछ स्थावर और जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं उनको क्षेत्रज्ञके संयोगसे याने शरीर और जीवके संयो-गसे जानो ॥ २६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमीश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

दोहा--परमेश्वरसवजंतुमें, बैठोएकसमान ॥
तिनहिंनसंतविनशैनहिं, जोजानैसोजान ॥ २७ ॥

जो कोई सर्व भूतोंमें सम रहेभये केवल मन इंद्रिया. क्योंके ईश्वर इस जीवको इन इंद्रियादिकोंके नाशहोतेभी इसको नाशरहित देखताहै याने जानताहै सोई जानताहै ॥ २७ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥
नहिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥२८॥

दोहा--ईश्वरकोसबठौरजो, जानतसमताभाइ ॥
आतमहींसोंहोइवश, रहेपरमगतिपाइ ॥ २८ ॥

सर्वदेवादिशरीरोंमें एकसरीखे रहेभये इस मन इंद्रियादिकोंके ईश्वर-जीवात्माको सम देखताभया जो कि, बुद्धिपूर्वक आपको नहीं हनताहै याने संसारमें नहीं गिराताहै उससे वह परम गतिको याने मुक्तिको पावताहै ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

दोहा—मायाकरतजुकर्मसब, जीवअकर्त्ताहोइ ॥
जानतजोयाभेदको, लखतआतमासोइ ॥ २९ ॥

जो सर्व कर्मोंको प्रकृति करकेही याने प्रकृतिविकार इंद्रियोंकरके ही करेभये जानताहै और तैसेंही आपको अकर्त्ता जानताहै सो जानताहै ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

दोहा-एकआतमामें सुथित, सबप्राननिकोनाइ ॥
आतमहीतेविस्तरे, लखेसुब्रह्महिपाइ ॥ ३० ॥

जब भूतोंका पृथग्भाव याने देवमनुष्यादिक शरीरोंकी छोटाई बडाई मोटाई पतराई इत्यादिक न्यारेन्यारे भावोंको एकस्थ याने एकप्रकृतिहीमें देखताहै और उसी प्रकृतिमें पुत्रादिरूप विस्तारको देखता है तब शुद्धस्वरूप को प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

दोहा-परब्रह्मपरमातमा, निर्गुणआतमकोइ ॥
देहमाँझयद्यपिरहै, करैनलिप्तनहोइ ॥ ३१ ॥

हेकुंतीपुत्र ! यह जीवात्मा अनादिपनेसे अविनाशी है केवल शरीरमें रहा भयाभी निर्गुणपनेसे न कुछ कर्मनको करताहै न उन कर्मफलोंकरके लिप्त होताहै ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

दोहा-ज्योंअकाशसूक्ष्मबसै, सबमेंपरसतनाहिं ॥
त्योंहीयहपरमातमा, लिपतनदेहहिमाहिं ॥ ३२ ॥

जैसे सर्वत्र प्राप्त भयाहुआ आकाश सूक्ष्मतासे उन भूतोंके गुणोंकरके लिप्त नहीं होताहै तैसे सर्व देवादि शरीरोंमें रहाभया जीवात्मा देहगुणोंकरके नहीं लिप्त होताहै ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

दोहा–ज्योंप्रकाशएकैकरै, सबजगसूरजदेव ॥
त्योंहीसबकीदेहमें, परमातमकोभेव ॥ ३३ ॥

हे भारत! जैसे एक सूर्य इस सर्व लोकोंको प्रकाशता है तैसे यह जीव सर्व शरीरको प्रकाशता है ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषविवेक योगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञको, भेदलखैंजेकोइ ॥
जीवप्रकृतिअरुमोक्षको, जानेमुक्तिसहोइ ॥ ३४ ॥

जो कोई ज्ञानदृष्टिकरके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ऐसे अंतरको और भूत-प्रकृतिके मोक्षको जानते हैं वे मेरेको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां त्रयोदशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १३ ॥

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

दोहा–परमजुउत्तमज्ञानसो, तोकेदेवबताइ ॥
जाहिजानिकैमुनिसबे, रहैंमुक्तियोंपाइ ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, सर्वज्ञानोंमें उत्तम प्रसिद्ध भया हुआ ज्ञान फिर कहताहौं जिसको जानिके सर्व मुनिजन यहांसे श्रेष्ठ सिद्धिको याने परमपदको जातेभये ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

दोहा-याहीज्ञानहिसेइके, मेरोलह्योस्वरूप ॥
प्रलयविथातिनकोनहीं, परेनतेभवकूप ॥ २ ॥

जो कहता हौं इस ज्ञानको प्राप्तहोके मेरी सधर्मताको याने मेरे समानरूप वैभवको वे मुनिजन प्राप्त होते भये वे उत्पत्तिकालमें न उत्पन्न होतेहैं और प्रलयमें न दुःखी होते हैं ॥ २ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ॥
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

दोहा-ब्रह्मप्रकृतिमोंजोतिहै, तामैंगर्भहिराखि ॥
उपजावतसबसृष्टिहौं, अर्जुनविचअभिलाखि ॥ ३ ॥

हे भारत ! मम महद्ब्रह्म याने मेरी प्रकृति सर्वभूतोंकी योनि याने उत्पत्तिस्थान है मैं उस प्रकृतिमें जीवरूप गर्भको धारण करता हौं तब उससे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्त्तयः संभवंति याः ॥
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

दोहा-जोजोमूरतिहोतिहैं, सबयोनिनमेंआइ ॥
तिनकोहौंहीबीजहौं, मैंहिपिताअरुमाइ ॥ ४ ॥

हे कुंतीपुत्र ! देवमनुष्यादि सर्व योनिनमें जो देही उत्पन्न होते हैं उन सबकी महत् ब्रह्म याने प्रकृति कारण है मैं चेतनरूप बीजका देनेवाली पिता हौं ॥ ४ ॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

दोहा-सतरजतमएगुणभये, मायाहीतेंमानि ॥
देहमाँझयाजीवको, एईबाधतआनि ॥ ५ ॥

हे महाबाहो ! सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न गुण इस देहमें अविनाशी जीवको बंधन करते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चाऽनघ ॥ ६ ॥

दोहा—निर्मलऔरप्रकाशकरि, सतगुणशांतिस्वभाय ॥
ज्ञानसंगसुखसंगसों, बांधतजीवहिआय ॥ ६ ॥

हे निष्पाप ! उन गुणोंमें सत्वगुण निर्मलतासे प्रकाशक याने शुभाशुभ कर्मोंका दिखानेवाला रोगरहित है इसीसे यह सुखकी आसक्तिसे और ज्ञानके संग करके बांधता है याने ज्ञानसुखसे शुभकर्म शुभकर्मसे स्वर्गादि फिर उत्तम कुलमें जन्म फिर ज्ञानसुख ऐसे बांधता है ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

दोहा—रजगुणरागस्वरूपहै, तृष्णासँगकोहेतु ॥
कर्मसंगकरिजीवको, ऐसेबंधनदेतु ॥ ७ ॥

हे कुंतीपुत्र ! तृष्णा और स्त्री धनादिनमें आसक्तिका करनेवाला रजोगुण विषयादिकमें प्रीति उपजानेवाला जानो वह जीवको कर्म संगसे बांधता है जैसे प्रीत्यात्मक कर्मसे उन कर्मसंगिनमें जन्म फिर कर्म फिर जन्म ऐसे ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

दोहा—होतजुतमअज्ञानतें, मोहतसबकोहीय ॥
आलसनिद्राविकलता, बांधतसबकोजीय ॥ ८ ॥

हे भारत ! सर्वदेहधारी जीवोंको मोहनेवाला तमोगुण अज्ञानका कारण जानो वह प्रमाद आलस और निद्राकरके बंधन करता है ॥ ८ ॥

सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

दोहा-सतगुणसुखमेंबढतुहै, कर्मरजोगुणहोय ॥
आलसमैंतमगुणबढै, रहतज्ञानसबखोय ॥ ९ ॥

हे भारत ! सत्वगुण मनुष्यको सुखमें लगाता है रजोगुण कर्म में तमोगुण ज्ञानको ढंकिके फिर प्रमादमें लगाताहै ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत ॥
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

दोहा-रजगुणतमगुणपेलिकैं, रहतसत्त्वगुणपूरि ॥
रजसतकोएलैजुतम, रहतेसततमदूरि ॥ १० ॥

हे भारत ! यद्यपि ये गुण प्रकृतिके हैं तौभी विपरीतताका कारण यह कि, रजोगुण और तमोगुणको जीतिके सत्त्वगुण प्रबल होता है और रजोगुण सत्वगुणको जीतिके तमोगुण प्रबल होता है तैसोही तमोगुण सत्त्वगुणको जीतिके रजोगुण प्रबल होताहै यहाँ कारण प्राचीनकर्म और नित्य आहारादिक है ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

दोहा-सबद्वारनिमेंदेहमें, जबहिंप्रकाशतुज्ञान ॥
तबहिंबढैहैसत्त्वगुण, अर्जुन यह तूजान ॥ ११ ॥
बढत रजोगुणहैजबहिं, नरशरीरमें आइ ॥
लोभकरमउद्यमअशन, इनहिंदेतप्रगटाइ ॥ १२ ॥

हे भरतवंशिनमेंश्रेष्ठ ! इस देहमें जब सर्वनेत्रादिद्वारोंमें प्रकाश याने वस्तुका यथार्थ निश्चय सोई ज्ञान उत्पन्नहोय तब सत्त्वगुण बढाहै

ऐसो जानना और रजोगुणके बढनेसे लोभ जो धनादिक खरचेविना और मिलनेकी इच्छा प्रवृत्ति याने प्रयोजनविना चंचलता कर्मनका आरंभ इंद्रियलोलुपता विषयइच्छा इतने उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

दोहा--अर्जुनजबहींकरतहै, तमगुणआइप्रकास ॥
आलसमोअज्ञानतब, मनमेंकरतविलास ॥ १३ ॥

हे कुरुनंदन! तमोगुणके बढनेसे विवेककी हानि निरुद्यमता और न करनेका करना और विपरीतज्ञान इतने ये होतेहैं ॥ १३ ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

दोहा—जोसतगुणकीवृद्धिमें, तजैजीवनिजदेह ॥
तो ज्ञानीकेलोकमैं, जायकरै वहगेह ॥ १४ ॥

जब सत्त्वगुणके बढते समयमें देहधारी प्रलय याने मृत्युको प्राप्तहोय तब आत्मज्ञानिनके शुद्ध लोकोंको प्राप्तहोता है अर्थात् आत्मज्ञानिनके कुलमें आत्मज्ञान जाननेयोग्य शरीरोंको प्राप्त होताहै “लोकस्तुभुवनेजने” इसप्रमाणसे यहाँ लोकशब्द जनवाची है ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

दोहा—रजगुणमेंतजिप्राणको, कर्मवंतवरजाय ॥
तमगुणमेंजोमरतहै, पशुनिजायप्रगटाय ॥ १५ ॥

रजोगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्तहोके कर्मसंगिनमें जन्म लेताहै याने उनमें जन्म लेके सकाम कर्म करके स्वर्गको जाताहै फिर उनहीमें जन्म लेके फिर कर्म करके स्वर्गमें ऐसेही फिरता रहताहै तथा तमो गुणमें मराभया

नीचयोनिमें जन्मतेहै वहाँभी वैसाही क्रम जानना ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

दोहा-सुकृतकर्मतेंहोतहै, सात्त्विकफल अतिस्वच्छ ॥
रजगुणकोफलदुःखहै, तम अज्ञानफलतुच्छ ॥ १६ ॥

सुकृत कर्मका फल सात्त्विक निर्मल कहतेहैं याने उसके करते करते कोई जन्ममें मुक्त होताहै और रजोगुणी कर्मका फल दुःख याने उस सकामसे स्वर्ग स्वर्गसे मृत्युलोक फिर स्वर्ग ऐसे संसारदुःखही है तमोगुणी-कर्मका फल अज्ञान है याने उससे नरकही है ॥ १६ ॥

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

दोहा-लोभरजोगुणतेंभयो, सतगुणतेंहैज्ञान ॥
तमगुणतेंहैविकलता, मोहऔरअज्ञान ॥ १७ ॥

सात्त्विककर्मसे ज्ञान होताहै और राजससे लोभही होताहै तामससे अज्ञान और मोह होतेहैं और अज्ञानभी होताहै ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥ १८ ॥

दोहा-सात्त्विकऊंचेजातहैं, राजसमध्यमलोक ॥
तामसजातअधोगतिन, पावतबहुविधिशोक ॥ १८ ॥

सात्त्विककर्म करनेवाले मुक्तिको पातेहैं राजसकर्मवाले मध्यमें (स्वर्ग मृत्यु लोकहीमें) रहतेहैं जैसे पुण्यसे स्वर्ग, पुण्यक्षीण होनेसे मनुष्यलोक फिर पुण्यसे स्वर्ग ऐसे वारंवार मध्यहीमें रहतेहैं तमोगुणी नीचगुणकी वृत्तिमें वर्त्तनेवाले तामसी नीचजाति पशुकीटादिकमें जन्मते रहतेहैं ॥ १८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

दोहा-गुणहींकोकरतारकरि, जानैज्ञानीकोय ॥
मोहिलखैगुणतेपरे, मोमेंलीनसुहोय ॥ १९ ॥

जब विवेकीपुरुष सत्त्वादिगुणोंके विना और किसीको कर्त्ता नहीं जानताहै और आपको गुणोंसे न्यारा जानताहै तब सो मेरी साम्यताको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

दोहा-देहकरतजोतीनगुण, तिनकोदेहजुत्यागि ॥
जन्ममृत्युदुखतेछुटै, रहैमुक्तिमेंपागि ॥ २० ॥

यह देहधारी जीव देहमें उत्पन्नभये इन सत्त्वादि तीनों गुणोंको उल्लंघन करके जन्म मृत्यु और जरापनके दुःखोंकरके छुटाभया मोक्षको पाताहै गुणयुक्त नहीं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच।

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

दोहा-जिननाशेहैं तीनगुण, ताके लक्षणकौन ॥
कैसेवाकेआचरण, तुमसोमोंसुकहौन ॥ २१ ॥

ऐसे सुनिके अर्जुन पूंछतेहैं कि, हे प्रभो! कौनसे चिह्नोंकरके इन तीन गुणोंको उल्लंघनकियाभया होताहै वह कैसे आचरणवाला होताहै और इन तीनों गुणोंको कैसे उल्लंघन करै ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ॥

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥
उदासीनवदासीनो यो गुणैर्न विचाल्यते ॥
गुणा वर्त्तंत इत्येवं योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

दोहा–मोहज्ञानअरुकर्मको, जिनजान्योहियमाहिं ॥
चितपायेचाहैनहीं, लहिसुखपावैताहिं ॥ २२ ॥
उदासीनवैठोरहै, सुखदुखचपलनहोय ॥
गुणसबकारजकरतहै, जोजानतहैलोय ॥ २३ ॥
सुखदुखकोसमकरिगनै, कंचनमाटीभाय ॥
प्रियअप्रियकोतुल्यगति, स्तुतिनिंदाइकदाय ॥ २४ ॥
तुल्यमानिअपमानअरु, मित्रशत्रुसमताहि ॥
सबआरंभनिजोतजै, गुणातीतकहिताहि ॥ २५ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनिके भगवान् कहते हैं कि, हे पांडुपुत्र ! जो पुरुष प्रकाश याने आरोग्यादिक सत्त्वगुणके कार्य और प्रवृत्ति याने रजोगुणके कार्य और मोह याने तमोगुणके कार्य ये जो प्रवर्त होई तौ इनको नहीं त्याग चाहता है और निवर्त्तभये इनको न चाहता है उदासीन सरीखों स्थित भयाहुआ गुणकरके नहीं चलायमान होता है आप आपके कार्योंमें गुण ही वर्त्तमान है ऐसे जो स्थिर हैं चलायमान नहीं होता है सुख दुःखमें सम स्वस्थ ठीकरी कंकर पत्थर और सोना जिसके सम हैं तुल्य हैं प्रिय अप्रियजिसके धीर इसीसे आपकी निंदा स्तुति समान जानता है

मान और अपमानमें तुल्य मित्रशत्रुपक्षमें तुल्य मेरे सेवनादिकविना सर्वआरंभोंको त्यागी सो गुणातीत कहाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥२७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

दोहा-मोकोंजोदृढभक्तिसों, सेवैचितकेचाय ॥
सोतीनोंगुणकोलहै, रहैब्रह्मकोपाय ॥ २६ ॥
अर्जुनहौंहींब्रह्महौं, मोह्योंमेरोरूप ॥
हौंअविनाशीधर्महौं, आनँदपरमअनूप ॥ २७ ॥

जिसवास्ते कि, मरणधर्मरहित और इसीसे अविनाशी जो ब्रह्म याने मुक्तजीव उसका और सनातन धर्म जो भक्तियोग उसका और मुख्य सुख जो स्वस्वरूपकी प्राप्ति उसका मैं आधार हौं इसीसे जो अखंडित भक्तियोगकरके मेरेको भजता है सो इन गुणोंको उल्लंघन करके मेरी समताको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्दशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

दोहा–ऊरधजरशाखातरे, अविनाशीअश्वत्थ ॥
देवपुत्रजोजानई, सोजानैसबअर्थ ॥ १ ॥

तेरहवें अध्यायमें क्षेत्ररूप प्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष याने जीव इनका स्वरूप कहा शुद्धजीवात्माकेभी प्रकृतिसंबंधी गुणोंके प्रवाहनिमित्त देवादिक आकारसे परिणामको प्राप्तभई जो प्रकृति उसका संबंध अनादि कहा चौदहवें अध्यायमें कहा कि, इस जीवको जो कार्य और कारण अवस्थानमें यह गुणसंगप्रवाहमूलप्रकृतिसंबंध सो भगवान् ही ने कियाहै ऐसेकहिके विस्तार-सहित गुणसंगप्रकारको कहिके कहा कि, गुणसंगनिवृत्तिपूर्वक स्वस्वरूपकी प्राप्ति भगवद्भक्ति मूलही है. अब पंद्रहवें अध्यायमें जो भजने योग्य भगवान् आपके कल्याण गुणादिकोंकरके बद्धमुक्त दोनों प्रकारके जीवोंसे विल-क्षण (न्यारे) उनको पुरुषोत्तमत्व कहनेको जो यह बंधन आकारसे विस्तरित प्रकृतिका परिणाम विशेषसंसार उसको पीपरवृक्षरूपकल्पित करके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये कि, जिसके वेद पत्ते अर्थात् जैसे पत्तों-करके वृक्ष बढताहै तैसे यह संसाररूप वृक्ष वेदोक्तकर्म करके बढताहै इससे वेद पत्तारूप हैं ऊर्ध्वमूल याने सत्यलोकमें ब्रह्मा जिसका मूल है अधःशाख याने सत्यलोकसे नीचे जो देव मनुष्य कीट पतंगपर्यंत शरीर ये उसकी शाखा हैं ऐसा अव्यय याने सम्यक् ज्ञानप्राप्ति होनेसे प्रथम अज्ञानदशामें प्रवाहरूप करके छेदनेके अयोग्य इसीसे अज्ञानिके अविनाशीहै ऐसा इस संसारको अश्वत्थ याने पीपरवृक्षरूप श्रुति कहती है तिसको जो जानताहै सो वेदका जाननेवालाहै अर्थात् वेद इस संसारके छेदनेका उपाय कहताहै तो जो इसको जानैगा तौ छेदनेकाभी उपाय जानैगा इससे वह वेदजानने-वालाहै ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषय-

प्रवालाः ॥ अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबं-धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

दोहा–गुणसींचीशाखावढी, विषयापल्लवभाय ॥
जरफैलीकर्मनिबँधी, मनुजलोकमेंआय ॥ २ ॥

अब उस संसारवृक्षकी औरभी विलक्षणता कहते हैं जैसे कि सत्त्वादिगु-णोंकरके बढीभई और शब्दादिक विषय जिनके प्रवालयाने कोपर याने जो नये एक दिनके निकसेभये पत्ते वैसे पत्ते जिनके विषयहैं ऐसी उस वृक्षकी शाखैं नीचे मनुष्यलोकमें और ऊपर देव गंधर्वादिलोकोंमें फैलरहीहैं अर्थात् नीचकर्मसे नीचे मनुष्योंसेभी नीच पश्वादिशरीर ऊपर उत्तमकर्मसे उत्तम देवादिशरीररूप शाखं फैलरहीहैं नीचे मनुष्यलोकमें भी उसकी कर्मानुसारी मूलें फैलीरहीहैं अर्थात् मनुष्यलोकमें जो ऊंच नीच कर्म वही मूलरूपहैं ऊंच नीचपदवी कर्मविना नहीं कर्म मनुष्यशरीरविना नहीं होताहै ॥ २ ॥

नरूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥ ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः ॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

दोहा–आदिअंतनहिंजाहियै, थानरूपनहिंजाहि ॥
दृढअसंगहथियारलै, दुसहमूलतरुढाहि ॥ ३ ॥
चाहकरैताठौरकी, फिरैनजाकोपाय ॥
सृष्टिभईजापुरुषते, ताकीशरनसुजाय ॥ ४ ॥

इस संसारवृक्षका इसलोकमें जैसा कहाहै तैसा रूप अज्ञानीजनों करके नहीं जाननेमें आताहै न उसका अंत और न आदि और न स्थिति

जाननेमें आतीहै ऐसे दृढमूल इस पीपर वृक्षको अतिदृढ वैराग्यरूप शस्त्रसे छेदन करके फिर जिससे यह प्राचीन प्रवृत्ति याने गुणमय भोगरूप संसार-प्रवाह विस्तारित है उसी आदि पुरुषके शरणागतहोके उस पदको ढूंढना कि, जिसमें गयेभये मुनिजन फिर इससंसारमें नहीं आते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

दोहा-कामसंगअरुमोहतजि, अध्यातमरतिहोय ॥
सबदुखतजिताकोनहीं, अविनाशीजोकोय ॥ ५ ॥

जो मानमोहकरके रहित हैं और जिनने संगदोषोंको जीता है और जो अध्यात्मशास्त्रहीमें नित्य वर्तमान हैं और जिनकी कामना निवृत्त जो सुखदुःखसंज्ञक द्वंद्वोंसे छुटे भये हैं वे ज्ञानिजन उस अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं याने स्वस्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥ यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

दोहा-पावकरविअरुचंद्रमा, ताहिकरैनप्रकाश ॥
फिरैनताकोपाइकैं, सोहैमेरोवास ॥ ६ ॥

सूर्य उस आत्माको नहीं प्रकाशिसकता है न चंद्रमा और न अग्नि-प्रकाशिसकता है जिसरूपको याने शुद्धआत्मस्वरूपको प्राप्त होके नहीं संसारमें आते हैं वह मेरा परम धाम है याने मेरे रहनेका मुख्यस्थान मेरा शरीर है इस जगह "यस्यात्माशरीरं" यह श्रुतिभी प्रमाण है ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

दोहा-जीवलोकमेंजीवयह, अविनाशीमोरूप ॥
मनहींआदिजुइंद्रियनि, औरप्रकृतिकोभूप ॥ ७ ॥

जो यह ऐसा वर्णन किया सो यह मेराही सनातन अंश है याने जैसे प्रकृति और अनंतजीव मेरेही हैं उनमें यह एक मेराही है मेरीही विभूति है सो यह इस जीवलोकमें जीवभूत याने अति संकुचितज्ञान भयाहुआ पांच-ज्ञानेंद्रिय और एक मन ऐसे मनसहित छः प्रकृतिविकार इस देहमें रहीभयीं इंद्रियोंको खैंचता फिरता है ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

दोहा-जाशरीरकोंतजतइह, कहाकरैसनबंध ॥
इंद्रियईश्वर सँगरहैं, वायुसंगज्योगंध ॥ ८ ॥

जब यह जीव शरीरको प्राप्त होता है और जब वर्त्तमानशरीरसे जाताहै तब यह मन इंद्रियोंका ईश्वर आपकी सेनारूप इन इंद्रियोंको, पवन पुष्पादिक गंधस्थानसे गंधोंको जैसे तैसे ग्रहणकरके जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

दोहा-श्रवणनेत्रअरुनासिका, त्वचाजुरसनाजानि ॥
इनकोगहिमनसंगलै, करतजीवविषयानि ॥ ९ ॥

यह जीवात्मा श्रोत्र इंद्रिय याने कान नेत्र और स्पर्शन जो त्वचाइंद्रिय रसना जो जिह्वा और घ्राण जो नासिका और मन इनको आश्रयकरके विषयोंको सेवता है ॥ ९ ॥

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ॥
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

दोहा–इंद्रियधुतनिकसतरहत, करतविषयकोभोग ॥
मूढजीवकोऽनलखै, लखैजुज्ञानीलोग ॥ १० ॥

यह जो गुणोंकरके युक्त आत्मा तिसको देहत्यागनेको अथवा देहमें रहते भयेको अथवा विषयभोगतेभयेको भी अज्ञानीजन नहीं देखतेहैं जिनके ज्ञानदृष्टिहै वे देखतेहैं ॥ १० ॥

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥११॥

दोहा–योगेश्वरजतननिकिये, देखतहैंहियमाहिं ॥
मूरखजतनहिकरतहूँ, जीवहिदेखतनाहिं ॥ ११ ॥

योगिजन जतन करतेकरते आपके अंतःकरणमें रहेभये इस आत्माको देखतेहैं और जो विषयासक्तहैं वे जो शास्त्रद्वारा उपाय करैं तौभी वे अज्ञानी इस आत्माको न देखिसकैं ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

दोहा–तेजजुहैआदित्यमें, भासतसबसंसार ॥
चंद्रमाँझअरुअग्निमें, सोमेरोनिरधार ॥ १२ ॥

जो सूर्यनमें रहाभया तेज सर्व जगत्को प्रकाशिरहाहै और जो तेज चंद्रमामें और जो अग्निमेंहै उस तेजको मेराही तेज जानो ॥ १२ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः १३

दोहा–धारतहौंसबजीवकों, करिपुहमीपरवेस ॥
पोषतहौंहीऔषधी, रसमयशशिकेभेस ॥ १३ ॥

मैं पृथिवीमें प्रविष्टहोके अपने अचिंत्य सामर्थ्यकरके सर्वभूतोंको

धारण करताहौं और अमृतमयी चंद्र होके सर्व औषधिनको पालताहौं ॥ १३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

दोहा--हौंहींजठराअग्निके, सबदेहिनमैंआय ॥
प्राणअपानसहाइसों, जारतअन्नपचाय ॥ १४ ॥

मैं जठराग्नि होके सर्वप्राणिनके देहमें रहाभया प्राण और अपान संयुक्तभक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय ऐसेचारप्रकारके अन्नको पचाताहौं ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

दोहा—सबकेहियमेंहौंरहों, मोतेज्ञानविचार ॥
वेदसबैमोकोकहैं, मैंतिनकोकरतार ॥ १५ ॥

मैं सर्वके हृदयमें प्रविष्टहौं और सर्वके स्मृति, ज्ञान और विचार मेरेसे होतेहैं और सर्व वेदोंकरके मैं ही जानने योग्यहौं और वेदांतका कर्ता और वेदका जाननेवाला मैं ही हौं ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवच ॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

दोहा—लोकमाँझद्वैपुरुषहैं, क्षरअरुअक्षरभाय ॥
क्षरशरीरकोकहतहैं, अक्षरजीवगनाय ॥ १६ ॥
उत्तमपुरुषसुऔरहै, परमातमकेसेस ॥
तीनलोकसोयतरहो, करिकैनिजपरवेस ॥ १७ ॥

इस लोकमें क्षर और अक्षर ऐसे ये दोप्रकारके पुरुष हैं तिनमें सर्व शरीरधारीभूत प्राणी क्षर और मुक्तजीव अक्षर कहाता है इन दोनोंसे उत्तम पुरुष और है जो परमात्मा ऐसे कहाता है जो अविनाशी ईश्वर त्रिलोकोंमें प्रवेशकरके सर्व त्रिलोकीका भरण पोषण करताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

दोहा-क्षरअरुअक्षरतेपरे, हौंसवतेअधिकाय ॥
यातेंवेदसलोकमें, पुरुषोत्तममोनाय ॥ १८ ॥

जिसवास्ते कि, मैं बद्धावस्थ जीवसे श्रेष्ठ और मुक्तसेभी उत्तम हूँ इससे स्मृति और वेदमेंभी पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हौं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

दोहा-जोकोउमोकोनैभजत, तेईमूरखमान ॥
अर्जुनजेमोकोभजत, तेईजानसुजान ॥ १९ ॥

हे भारत! जो सम्यक्ज्ञानी पुरुष ऐसे मेरेको पुरुषोत्तम जानता है सो सर्वज्ञता है इसीसे वह सर्वभाव याने माता पिता सुहृद् धनादिक मेरेको जानिके मेरेहीको भजता है ॥ १९ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुराणपुरुषोत्तमयोगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–छिपीबातग्रंथिनजुही, सोतोसोंकहिदीन ॥
पारथजोजानतयह, तेईबुद्धिप्रवीन ॥ २० ॥

हे निष्पाप ! ऐसे यह अतिगोप्य शास्त्र मैंने कहा हे भारत ! इसको जानिके बुद्धिमान् और कृतकृत्य होता है ॥ २० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां पंचदशोऽध्यायप्रवाहः ॥ १५ ॥

ऐसे तेरहवें अध्यायसे पंद्रहवें समाप्तिपर्यंत क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका विवेक और गुणत्रयका विभाग और क्षराक्षर याने बद्धमुक्त जीवोंका स्वरूप तथा परमात्माका पुरुषोत्तमत्व और सामर्थ्य कहते भये अब सोलहवें अध्यायमें जीवकी शास्त्रवश्यता और दैवासुरसंपत्ति विभाग कहेंगे ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥
दया भूतेष्वलोलुत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

दोहा–अभयहियेकीशुद्धता, ज्ञानयोगथिरहोय ॥
दानयज्ञतपवेदरुचि, दमजुसरलताहोय ॥ १ ॥
अनहिंसाअरुसत्यमय, रहैक्रोधविननित्त ॥
दानशांतबहुविधिरचै, दोषनआनैंचित्त ॥
दयाकरैसबजंतुपर, तजिचपलाईभाय ॥
लाजअकर्मनितेसमृदु, व्यर्थक्रियाछुटिजाय ॥ २ ॥

तजक्षमाशुचिधैर्ययुत, तजैद्रोहअभिमान ॥
देवसंपदाजिनलही, जामेंयेगुणज्ञान ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, हे भारत ! दैवी संपदाको प्राप्त भये मनुष्यको निर्भय रहना अंतःकरणकी शुद्धि प्रकृतिसे भिन्न आत्मा है ऐसी निष्ठा सुपात्रको कुछदेना और मनको विषयोंसे निवृत्त करना और निष्कामतासे भगवान्के पूजनरूप पंचमहायज्ञोंका करना वेदमंत्रादिकोंका जप एकादशीव्रतादिरूप तप सबसे सरल रहना जीवमात्रको पीडा न देना हित और यथार्थ भाषण क्रोधका न करना उदारता शांति याने इंद्रियोंको वश करना चुगली न करना भूतप्राणिमात्रपरे दया परद्रव्यधनादि पर इच्छा न करना अक्रूरता लज्जा व्यर्थकामका न करना तेज क्षमा याने सहनशीलता धीरज पवित्रता द्रोहको न करना मानप्राप्तिके वास्ते अति मानका न करना ये २६ गुणदैवीसंपदाके होतेहैं॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ॥
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

दोहा–दंभदर्पअज्ञानरिस, अरुअभिमानकठोर ॥
तमकेएगुणजिनलहो, असुरसंपदाघोर ॥ ४ ॥

हे पृथापुत्र ! आसुरी संपदाको प्राप्त भये मनुष्यके दंभ, दर्प और अभिमान क्रोध और कटु भाषण और अज्ञान ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ॥
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोसि पांडव ॥ ५ ॥

दोहा–देवसंपदातेमुकति, बंधआसुरीजोहि ॥
शोचैजिनिअर्जुनभई, देवसंपदातोहि ॥ ५ ॥

हे पांडुपुत्र ! दैवीसंपदा मोक्षके वास्ते है आसुरी बंधनके वास्ते निश्चय की गई है तुम दैवीसंपदाको प्राप्त भये हो मत शोचो ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ॥
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

दोहा—दैवआसुरीभेदते, द्वैविधिसृष्टिहैएहु ॥
पहिलोकहिविस्तारसों, अबदूजीसुनिलेहु ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! इस लोकमें दो प्रकारके प्राणीहैं एक दैव और दूसरे आसुर दैव विस्तारसे कहा आसुरको सुनो ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ॥
न शौचं नाऽपि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

दोहा—अवधिऔरविधिजगतकी, आसुरजानतनाहिं ॥
सत्यशौचआचारशुभ, नहिंएगुणतिनमाहिं ॥ ७ ॥

असुरस्वभाववाले मनुष्य संसारसाधन और मोक्षसाधनभी नहीं जानतेहैं उनमें न शुचिता और न शास्त्रीय आचरण न सत्यभी रहता है ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

दोहा—वेदपुराणजुईश्वरहिं, नाहींमानतमूढ ॥
मैथुनतेसंसारयह, कामक्रोधअतिगूढ ॥ १ ॥
यहमैंल्यायोहैतबै, लहोंमनोरथऔर ॥
यहधनमेरेगेहमें, जोरौंगोबहुऔर ॥ २ ॥ ८ ॥

वे असुरप्रकृति मनुष्य इस जगतको कोई तौ असत्य याने मिथ्या और भ्रम कहते हैं कोई अप्रतिष्ठ याने इसका कोई आधार नहीं ऐसा कहते हैं कोई अनीश्वर कहते हैं स्त्रीपुरुषके परस्परसंयोगसे भये विना

और जगत्क्या है केवल कामहीके निमित्तसे याने स्त्रीपुरुषके संयोगहीसे होताहै ऐसाकहतेहैं ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

दोहा—अल्पबुद्धिहैंनष्टचित, यहैदृष्टिगहिलेत ॥
हिंसायुतकर्मनिकरैं, रिपुजयछयकेहेत ॥ १ ॥
कर्त्ताविनमानतजगत, अथिरअसत्यसुजान ॥
उपजतहैयेपुरुषतैं, ताकेहेतकोमान ॥ २ ॥
गहिकैऐसीदृष्टिको, नष्टवित्तजुकुबुद्धि ॥
होतउग्रकेमानिते, जगतअहितविनशुद्धि ॥ ३ ॥ ९ ॥

वे अज्ञानी जन खानपानादिके अल्पपदार्थमें बुद्धिवाले ऐसी समुझको ग्रहणकरके उग्रकर्मकरनेवाले याने परस्त्री धन पुत्रादिकोंके हरन करनेवाले सर्वके अहित जगत्के नाशके वास्ते प्रवर्त्त होतेहैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुःपूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्ततेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

दोहा—भजतअपूरवकामको, दंभमानमदपाय ॥
गहतुबुराईमोहते, मांसऔरमदखाय ॥ १० ॥

जो दुःखसेभी न पूरीहोय ऐसी कामनाको आश्रितहोके दंभ मानें और मदयुक्त भयेहुये मोहसे असद्ग्राहोंको ग्रहणकरके याने मारण मोहन वशीकरणके उपाय करना ऐसे भ्रष्टआचरण स्वीकार करके अपवित्रव्रत भूतादि सेवनेवालेभये हुए उनही काममें प्रवर्त्त होतेहैं ॥ १० ॥

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

दोहा—जाकोकछुपरमाननहिं, ताचिंतामेंलीन ॥
कामभोगअतिलोभहै, निश्चयमानतहीन ॥ ११ ॥

अपार और मरणांत चिंताको प्राप्तभये हुए कामोपभोगमें तत्पर इतनाँही सुखहै ऐसें निश्चयकियेभये ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

दोहा—आशाफांसनिसोंबँधे, कामक्रोधचितचाह ॥
जोरतधनअन्यायकरि, कामभोगनिर्वाह ॥ १२ ॥

सैंकडों आशाकी फांसिनकरके बँधे भये काम और कोपके स्वाधीन भये कामभोगके वास्ते अन्यायकरके द्रव्यसंचयको उपायकरते रहतेहैं १२॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

दोहा—मनवांछितयहमैंलह्यो, यहहौंचाहतनाहिं ॥
यहधनमेरेहैजुरो, जोरिहौंऔरोमाहिं ॥ १३ ॥

मैंने आज यह पाया इस मनोरथको पावोंगाँ मेरे है फिर [illegible] यहभी होयेगा ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

दोहा—यहवैरीहैमैंहन्यो, करौंऔरकोअंत ॥
ईश्वरहौंभोगीजुहौं, सुखीसिद्धबलवंत ॥ १४ ॥

मैंने यह वैरी मारा और औरनकोभी मारूंगाँ मैं ईश्वरहौं मैं भोगीहौं मैं सिद्धहौं मैं बलवान्हौं मैं सुखीहौं ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया॥

यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः॥१५॥

दोहा-मैंहोंधनीकुलीनहों, औरनमोंहिंसमान ॥
जसोदेवमोहहिलहौं, मोहितयोंअज्ञान ॥ १५ ॥

मैं योग्यहौं उत्तम कुलमें जन्मा हौं मेरे समान और कौन है यज्ञ करौंगा दान देउंगा आनंद करौंगा ऐसे अज्ञानमें मोहरहते हैं ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

दोहा-उनकोमनवहुभ्रमतहैं, मोहजालपरिनित्त ॥
परमघोरअतिनरकमें, कामभोगकेहित्त ॥ १६ ॥

अनेकजगह चित्त लगनेसे भ्रमिष्ट मोहके जालमें फंसे भये कामभोगमें आसक्त वे अपवित्र नरकमें पड़ते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाऽविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

दोहा-निजवडिआईनितकहत, तवतनधनअभिमान ॥
नाममात्रयज्ञनिकरत, दंभीविनाविधान ॥ १७ ॥

जो आपको आपही श्रेष्ठ मानिरहे हैं और अनम्र हैं धन मान मदयुक्तहैं वे दंभसे अविधिपूर्वक नाममात्र यज्ञोंकरके यजन करते हैं ॥ १७ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

दोहा-अहंकारबलदर्पअरु, कामक्रोधगहिलेत ॥
दोषीनिजपरदेहमें, मोकोंतेदुखदेत ॥ १८ ॥

अहंकार बल हर्ष काम और क्रोधका आश्रयकर रहे हैं ऐसे वे आपके और औरोंके देहोंमें रहे भये मेरसे द्वेष करते भये मेरी निंदा करतेहैं॥ १८॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

दोहा–मोद्रोहीअरुमोहते, पापीअधमनिहारि ॥
जगतआसुरीयोनिमें, तिन्हेंदेतहौंडारि ॥ १९ ॥

मैं उन द्वेषकरनेवाले क्रूर अशुभ नराधमोंको संसारमें आसुरीही योनिनमें वारंवार पटकता हौं ॥ १९ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि ॥
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

दोहा–जनमजनममेंमूढते, होतजुआसुरआय ॥
मोकोतेपावतनहीं, परतअधमगतिजाय ॥ २० ॥

हे कुंतीपुत्र ! वे मूर्ख जन्मजन्ममें आसुरि योनिको प्राप्तभये हुये मेरेको न प्राप्तहोके फिर अधमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥

दोहा–नरकद्वारविधितीनहैं, देतआपुकोंनास ॥
कामक्रोधअरुलोभपुनि, रणछोडैसुखवास ॥ २१ ॥

कामना, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारका नरकका द्वार आपका नाशनेवाला है याने संसारमें भ्रमानेवाला है इससे इने तीनोंको त्यागना २१

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥

दोहा–तीनौद्वारजुनरकके, तिनतेंछुटैजुकोय ॥
जतनकरैकल्याणको, तबहिंपरमगतिहोय ॥ २२ ॥

हे कुंतीपुत्र ! इन तीनों नरकद्वारोंकरके छुटाभया मनुष्य आपके

कल्याणका साधन करताहै उससे परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥ २३ ॥

दोहा--जेशास्त्रविधिछोड़िकैं, करतक्रियावशकाम ॥
सिद्धिलहैनहिंपरमगति, नहिंसुखमौं विसराम ॥ २३ ॥

जो शास्त्रविधिको त्यागिके स्वइच्छाप्रमान चलताहै सो न सिद्धिको पावताहै न सुखको न मोक्षको पावताहै ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा—तातेंकाजअकाजमें, तोकोंवेदप्रमान ॥
कर्मनिकरितूंजानिके, तिनकोविधिसुविधान ॥ १ ॥
वेदकरतजुपरोक्षकैं, मोकोदेतजनाय ॥
मेरेईकर्मनिकरै, मेरीआज्ञापाय ॥ २ ॥ २४ ॥

इससे तुमको कार्याकार्यव्यवस्थामें शास्त्रप्रमाण जानिके इस लोकमें शास्त्रविधानोक्त कर्म करनेको योग्यहो ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षोडशोऽध्यायप्रवाहः ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

दोहा—श्रद्धायुतजापहिकरत, तजिवेदनकीनीति ॥
सतरजतममोथितिकहा, कहियेतिनकीरिति ॥ १ ॥

सोलहवें अध्यायमें ईश्वरतत्वका ज्ञान और ईश्वर प्राप्तिका उपाय इनके कारण मूल वेदही हैं ऐसे कहा और अंतमें कहाकि, शास्त्रविधिहीन कर्मकरनेवालेको सुखादिक नहीं सो सुनिके अर्जुन बोले कि, हे कृष्ण ! जो शास्त्रविधिको त्यागि के श्रद्धाकरके युक्त यजन करतेहैं उनकी क्या निष्ठाहै सत्वगुणहै किंवा रजोगुण तमोगुणहैं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

दोहा—श्रद्धानरकीतीनिविधि, होतजुसहजस्वभाव ॥
सात्त्विकराजसतामसी, सुनियेंतिनकेदाव ॥ २ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि, सात्विकी और राजसी और तामसी ऐसे तीनप्रकारकी निश्चय श्रद्धा होतीहै सो देहधारिनकी स्वभावहीसे होती हैं उसको सुनो ॥ २ ॥

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ॥
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

दोहा—परंपराहीजनमके, श्रद्धाहोतसमान ॥
श्रद्धामययहपुरुषहै, श्रद्धाताहिप्रधान ॥ ३ ॥

हे भारत ! सबकी श्रद्धा अंतःकरणके अनुरूप होती है यह पुरुष श्रद्धामयहै जो जिसश्रद्धावाला होताहै सो वहीहोताहै जैसे सात्विकी श्रद्धावाला सात्विक इत्यादि ॥ ३ ॥

यजंते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

दोहा–देवनिसेवैसात्विकी, राजसराक्षसयक्ष ॥
भूतप्रेतगणतेयजै, नरजुतामसीपक्ष ॥ ४ ॥

सात्विक पुरुष देवतानेंको पूजते हैं राजसी यक्षराक्षसोंको और और तामसी जन प्रेत भूतगणोंको पूजतेहैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्शयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मां चैवांतः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

दोहा–घोरतपस्याजेकरैं, जेनवेदमतिहोंहि ॥
भरैंदंभअहंकारसौं, कामरागबलगोंहि ॥ ५ ॥
पंचभूतजेदेहमें, तिनकोवेदुखदेत ॥
हियमेंमोंहूकोहनत, तेहैंअसुरअचेत ॥ ६ ॥

दंभ और अहंकारसंयुक्त कामना और विषयानुराग इनहीकी सेनायुक्त जे मनुष्य वे अशास्त्रविहित याने जोशास्त्रप्रसिद्ध नहीं ऐसे घोर तपको तपते हैं वे अज्ञानी जन शरीरमें रहेहुये भूतसमूहको और अंदर शरीरमें स्थित मेरेको भी दुःख देते हैं उनको आसुरनिश्चय याने असुरपनेमें निश्चय जिनका ऐसे उनको जानो ॥ ५ ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

दोहा–तीनिभाँतिआहारयह, सबकोंरोचनहोय ॥
यज्ञदानतपभेदजे, मोपैसुनियेसोय ॥ ७ ॥

आहार भी सबका तीनप्रकारका प्रिय होता है और यज्ञ तथा तप दान येभी तीनि प्रकारके हैं तिनका भेद यह सुनो ॥ ७ ॥

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः
दोहा—सुंदरथिरअतिचीकनों, सात्विकप्रिय आहार ॥
आयुसत्त्वआरोग्यबल, प्रीतिबढावनहार ॥ ८ ॥

जो आहार आयुष्य हुसियारी बल आरोग्य सुख और प्रीतिके बढाने-वाले होय मधुरादिरसयुक्त स्निग्ध स्थिर याने बहुतकाल रहनेवाले हृदयका वर्द्धक ऐसे आहार सात्विक जनोंको प्रियहोते हैं ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥
दोहा—दाहकरूषोउष्णकटु, तीच्छनखाटोखार ॥
शोकरोगदुखदेतहैं, राजसयेआहार ॥ ९ ॥

अतिकटु जैसे बहुत मिरचवाला पदार्थ अतिखट्टा अतिलोनवाला वडावगैरे अति गरमागरम अतितीक्ष्ण राईवगैरे मिश्रित अति रूखे और दाहकारक राजसिनेके प्रिय आहार दुःख शोक और रोगोंके देनेवा-लेहोते हैं ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥
दोहा—जाहिधरैपहिरकुगयो, वासोउठोबुसाय ॥
जूठोऔरपवित्रनहिं, भोजनतामसखाय ॥ १० ॥

जिस भात वगैरेको एकपहर बिता होय वह ठंढा पदार्थ रसविहीन दुर्गंधवाला और बासी और उच्छिष्टभी ऐसा अपवित्र भोजन तामसिनेको प्रियहोताहै ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ ११ ॥

दोहा-विधिविधानसोंकीजिये, छाँड़िफलनकीआस ॥
समाधानधरिहोयमें, सात्त्विकयज्ञविलास ॥ ११ ॥

यज्ञकरनाही योग्य है ऐसे मनको समाधानकरके फल इच्छारहित मनुष्योंने विधिपूर्वक जो यज्ञ कियाहोय सो यज्ञसात्त्विक है ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

दोहा-करिकैफलकीकामना, औरदंभकोभाय ॥
ऐसेजोयज्ञहिंकरहिं, सोहैराजसदाय ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो फलकी इच्छाकरके और दंभके वास्ते भी यज्ञकरे उस यज्ञको राजस जानो ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

दोहा-विनुअन्नहिविनुदक्षिणा, विनामंत्रविधिहीन ॥
विनश्रद्धायज्ञहिंकरैं, सोहैतामसलीन ॥ १३ ॥

जो यज्ञ विधिहीन उचित अन्नहीन मंत्रहीन दक्षिणारहित और श्रद्धारहित यज्ञ तामस कहा है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

दोहा-ज्ञानीद्विजगुरुदेवको, पूजैशुचिमृदुहोय ॥
ब्रह्मचर्यहिंसातजै, तपशारीरकसोय ॥ १४ ॥

देव ब्राह्मण गुरु और विद्वानोंका पूजन शुचिता सरलता ब्रह्मचर्य और परपीडावर्जन यह शरीरसंबंधी तप कहा है ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

दोहा—भयनकरैजेप्रियवचन, हितकारीसतभाय ॥
करैवेदअभ्यासपुनि, वाचिकतपयादाय ॥ १५ ॥

जो वचन उद्वेगकारक न होयँ और सत्यप्रिय हित होयँ और वेदपाठ मंत्रजपादिकोंका अभ्यास यह वाणीमय तप कहा है ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

दोहा—मनप्रसादजुमृषादिमृदु, इंद्रियनिग्रहमौन ॥
भावशुद्धवहकरतहैं, मानसतपसीतौन ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता सदयपना याने क्रूर न होना मितभाषण मनको वश करना और अंतःकरणकी शुद्धता यह इतना तप मानस कहाता है॥ १६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

दोहा—श्रद्धासोंनरतपकरत, सोहैतीनोंभाँति ॥
फलइच्छाछांडैकरै, सोईसात्त्विककाँति ॥ १७ ॥

फलकी इच्छा न करनेवाले योग्य पुरुष तिनकरके परम श्रद्धाकरके तपाभया सो तीनों प्रकारका याने मानस, कायिक, वाचिक तप सात्त्विक कहा है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

दोहा—पूजाआदरमानको, औरदंभकेकाज ॥
सोतपराजसकहतहैं, चंचलछनकसमाज ॥ १८ ॥

जो तप सत्कार मान और पूजाके वास्ते और दंभकरकेभी किया जाता है सो यहां शास्त्रमें राजस चल और नाशमान कहा है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

दोहा–देहहिदुखदेमूढ़है, हठसोंजोतपहोय ॥
परकोकष्टदिखावहीं, तामसतपहैसोय ॥ १९ ॥

जो तप दुराग्रह करके आपकी पीड़ाका निमित्त अथवा दूसरेके बिगारके वास्ते कियाहोय सो तामस कहाहै ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

दोहा–दानदेइउपकारबिनु, पात्रविप्रकोदेखि ॥
देशकालकोजानिके सात्त्विकदानविशेखि ॥ २० ॥

जो दान देनाही चाहिये ऐसी बुद्धिकरके कुरुक्षेत्रादि देशमें और ग्रहणादिककालमें जिससे फिर कुछ अपना उपकार नहोय ऐसेको तथा वह पात्र याने तपस्वाध्यायकरके रक्षक होय उसको दियाजाय सो दान सात्विक कहाहै ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

दोहा–कीजैजोउपकारको, फलकीआशामानि ॥
कीजैजोअतिकष्टसों,ताकोराजसजानि ॥ २१ ॥

जो प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलके निमित्तकरके फिर भी राहुवगैरे ग्रहनिमित्त उग्रदान दियाजाय सो राजस कहा है ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

दोहा–बिनादेशअरुकालबिनु, दीजैनीचहिदान ॥
बिनआदरअधिकारकरि, तामसताहिबखान ॥ २२ ॥

जो दान तिरस्कार आवज्ञापूर्वक देशकालविना और कुपात्रोंको दियाजाताहै सो दान तामस कहा है ॥ २२ ॥

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

दोहा--ॐ तत्सत्एब्रह्मके, नाम जु तीनप्रकार ॥
विप्रवेदअरुयज्ञपुनि, कीन्हेपहिलीवार ॥ २३ ॥

ओं तत् सत् ऐसे तीन प्रकारका वेदका निश्चय जाना गया है "याने ओंशब्दसे कर्मका स्वीकारकरना उचितहै तत् शब्दसे तदर्थ याने परमेश्व रार्थ करना उचितहै सत्से श्रेष्ठकर्म साधुवृत्तिसे करना ऐसा वेदका निश्चय" उसी निश्चयकरके युक्त ब्राह्मण याने वेदकर्म करनेवाले तीनो वर्णकर्मस्वी-कारार्थ और वेद जो ईश्वरार्थकर्मको प्रतिपादन करतेहैं और यज्ञ दान जो सत्कर्म ये मैंने पूर्वकालमें स्थापितकिये हैं ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्त्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

दोहा—क्रियायज्ञअरुदानतप, कहिपहिलेओंकार ॥
वेदवंतयोंकहतहैं, विधिविधानविस्तार ॥ २४ ॥

जिससे कि वेदवादी तीनोवर्णकर्म स्वीकारार्थ हैं तिससे ओं ऐसे कहिके याने कर्म स्वीकार करके वेदवादी तीनोंवर्णोंकी विधिसे कही गई यज्ञ दान तपकी क्रियां निरंतर प्रवर्त होती हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

दोहा—तत्त्वयहैकहियेकरत, क्रियायज्ञतपदान ॥
फलअभिलाषाछाँडिजे, चाहतमुक्तिनिदान ॥ २५ ॥

तत् याने कर्म तदर्थ है याने परमेश्वरार्थ है ऐसी बुद्धिसे फलका अनुसंधान नहीं करके यज्ञ, दान, तप, क्रिया और अनेकप्रकारकी दान-क्रिया मोक्षके चाहनेवालों करके कीजाती है ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

दोहा–साधुभावसतभावमें, सतकोकरतउचार ॥
औरभलेपुनिकर्ममें, सतकोगावतसार ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! श्रेष्ठपनेमें और साधुभावमें सत् ऐसा यह वाक्य युक्त करते हैं तथा श्रेष्ठ कर्ममेंभी सत्शब्दयुक्त करते हैं ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥

दोहा–यज्ञदानतपकीजुथिति, ताहिकहतसतनाम ॥
ताकेजेजेकर्महैं, ताकौंसतविश्राम ॥ २७ ॥

जो यज्ञमें, तपमें और दानमें स्थिति है सो सत् ऐसे कहाती है और जो ईश्वरार्थ कर्म हैं सो सत् निश्चय हैं ऐसे कहते हैं इन चारों श्लोकोंमें ओं तत् सत् इनका खुलासा किया है ॥ २७ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयवि-भागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—श्रद्धाविनुहोमतजनत, देतसबैसुअकाज ॥
अर्जुनसोयहअसतुहै, दुहूलोकनहिंसाज ॥ २८ ॥

हे पृथापुत्र ! जो श्रद्धाविना होमभया हवन दिया दान तपाभया तप और कियाभया कर्म है सो असत् ऐसा कहाता है सो न परलोकमें न इस लोकमें सुखदायक है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां सप्तदशोऽध्यायप्रवाहः ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

दोहा—त्यागसत्त्वजान्योचहत, कहियजुश्रीभगवान ॥
तत्त्वऔरसंन्यासको, न्यारोकरौंबखान ॥ १ ॥

अब इस अठारहवें अध्यायमें सर्वगीताका सारांश निरूपण होय, तहां अर्जुन प्रश्न करते हैं, कि, हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! संन्यासका और त्यागका तत्त्व न्यारान्यारा जाननेको चाहता हौं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—कामयुक्तकर्मनितजै, ताहिनामसंन्यास ॥
कर्मफलनिकौत्यागयह, त्यागकहतसुखरास ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये कि, कवि जो सारासारविवेकी वे कामनावाले कर्मोंके छोड़नेको संन्यास जानते हैं और

विचक्षण जो तत्वज्ञानी हैं वे सर्वकर्मोंके फलत्यागको त्याग कहते हैं ॥२॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

दोहा-कर्मछाँडियेदोषको, कोउकहतयारीति ॥
यज्ञदानतपकर्मजिति, भजोकरोयानीति ॥ ३ ॥

कोई एक ज्ञानिपुरुष दोषवाला कर्म त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं और कितनेक और आचार्य यज्ञ, दान, तप, कर्म नहीं त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

दोहा--याठौरहिपारथजुतू, मेरोनिश्चयजानि ॥
तीनिभाँतिकोत्यागयह, अर्जुनचित्तमेंआनि ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपकर्मये, कीजेतजियेनाहिं ॥
जातेपंडितजनइन्हैं, गिनतपवित्रहिमाहिं ॥ ५ ॥

हे भरतसत्तम ! उस त्यागमें मेरा निश्चय सुनो हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिससे कि, त्याग तीन प्रकारका कहा है तिसीसे यज्ञ, दान, तपरूप कर्म नहीं त्यागना, करनाही योग्य है यज्ञ, दान और तप ये ज्ञानिनको भी पवित्र करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

दोहा--फलछाँडेसंगहितजै, करैकर्मचितचाय ॥
अर्जुनयहमेरोमतहि, निश्चयउत्तमदाय ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! ये यज्ञादिकेभी कर्म ममता और फलोंको त्यागिके करने-योग्य हैं ऐसा निश्चय कियाभयां मेरा उत्तम मत है ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

दोहा--जोअवश्यकरनोकरम, ताकोछाँडिनदेय ॥
जोछोड़ैअज्ञानते, सोतामसगतिलेय ॥ ७ ॥

कारण कि, जो नियमित संध्यादि पंचमहायज्ञादिक हैं उन कर्मका त्याग नहीं हो सकता है जो मोहसे उसका त्याग किया सो तामस कहाता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

दोहा--इहैजानिकर्मनितजै, मतदेहीदुखहोइ ॥
यहतौराजसत्यागहै, यामेंफलनाहिंकोइ ॥ ८ ॥

जो कर्म दुःख ऐसे शरीरक्लेशके भयसे ही त्यागै सो राजस त्यागको करके त्यागफलको नहीं पावता है ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ९॥

दोहा--करनोंकर्मअवश्ययह, जानिजुकीजैकर्म ॥
संगऔरफलकोतजै, सात्त्विकत्यागसुधर्म ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म करनेयोग्य ऐसी बुद्धिसे ममता और फलको त्यागिके नियमित याने उचित ऐसीही बुद्धिसे करै सो त्याग सात्त्विक माना है ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥

त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

दोहा–बुरेकर्मनिंदैनहीं, भलेरहैनहिंलागि ॥
बुद्धिवंतसंदेहविन, यहहैसात्त्विकत्यागि ॥ १० ॥

जो सत्वगुणयुक्त बुद्धिमान्; संशयरहित कर्मफल त्यागी है सो अकुशलको याने संसारकारक कर्मको नँ निंदता है नं कुशल याने यज्ञादिकँ तिनमें आसक्त होताहै ॥ १० ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

दोहा–देहवंतयेकर्मसब, नाहींछाँडैजाहिं ॥
कर्मफलनिकोजोतजै, सोईत्यागीमाहिं ॥ ११ ॥

जिसवास्ते कि, देहधारीकरके सर्व कर्म त्यागनेको नहीं होसँकता है तिससे जो कर्मफलका त्यागी है सो त्यागी ऐसा कहा है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ॥
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् १२ ॥

दोहा–स्वर्गनरकअरुभूमिए, कर्मत्रिविधिफलजानि ॥
कर्मवंतकोहोतहैं, संन्यासीनहिंमानि ॥ १२ ॥

अप्रिय, प्रिय और मिश्रित ऐसे कर्मका तीन प्रकारका फल कर्मफलानुरागिनको मरेपर होता है और कर्मफल त्यागिनको कहीं भी नहीं ॥ १२ ॥

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् १३॥

दोहा–अर्जुनमोपैसुनितू, कारनहैंयेपाँच ॥
कहैसांख्यसिद्धांतमें, कामसिद्धिकोसांच ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! सर्वकर्मोंकी सिद्धिके वास्ते ये पांच कारण सांख्यसिद्धांतमें कहेभये मेरेसे सुनो ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

दोहा--अधिष्ठानकरताजुहै, कारणवहतेभाइ ॥
नानाविधिव्यापारअरु, पंचमदेउगनाइ ॥ १४ ॥

व ये कि, अधिष्ठान याने आधार अर्थात् शरीर तथा कर्त्ता याने जीव इस जीवके कर्त्तापनमें "ज्ञातएवचकर्त्ताशास्त्रार्थत्वात् " यहब्रह्मसूत्रप्रमाण है और न्यारे न्यारे प्रकारके करण याने मनसहित पंचइंद्रियोंके व्यापार और अनेकप्रकारकी न्यारीन्यारी चेष्टा याने पांच प्राणवायुनकी चेष्टा और यहां पांचवां दैव याने अंतर्यामी अर्थात् मैंहौं इस विषयमें "परात्तुतच्छ्रुतेः" यह ब्रह्मसूत्रभी प्रमाणहै यहां शंकासमाधान वाक्यार्थबोधिनीमें कियाहै ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभतेऽर्जुन ॥
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥१५॥

दोहा--मनअरुवचनशरीरसों, कर्मकरतयासाज ॥
भलेबुरेकोऊकरौ, विनाकर्मनहींकाज ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! शरीर वाणी और मन करके जो न्याय्य अथवा अन्याय्य जो कर्म प्रारंभ करा जाता है तिसके ये पांच कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

दोहा--येनरआतमएकको, मानतहैंकर्त्तार ॥
देखतिहूँदेखतनहीं, तेनरमूढगँवार ॥ १६ ॥

ऐसे सिद्धांत होनेपरभी तहां जो केवल आत्माको कर्त्ता जानता है

सो दुर्बुद्धिपुरुष अकृतबुद्धित्वसे याने यथार्थनिश्चयकारक बुद्धिहीनहै तिससे नहीं जानताहै ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥ १७ ॥

दोहा–जाकीबुधिनिर्लिप्तहै, अहंकारनहिं जाहि ॥
सोइनलोगनकोहनत, हनेनबंधनताहि ॥ १७ ॥

जिसके आपके कर्त्तापनेका भाव नहीं है जिसकी बुद्धि कर्ममें नहीं लिप्तहोतीहै सो इन लोकनको मारकेभी नमारताहै न पापमें बंधताहै तात्पर्य कि, तुम भीष्मादिक वधसे डरते हो तहां जो मनुष्य ममता अहंता रहित होके स्वधर्माचरण करताहै उसको उस कर्मजन्य पापपुण्यका भयनहीं ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

दोहा–प्रेरकतीनोंकर्मके ज्ञायज्ञेयज्ञातार ॥
कारणकर्त्ताकर्मके, संग्रहतीनिप्रकार ॥ १८ ॥

ज्ञान जो कर्त्तव्यकर्मका जानना ज्ञेय जो वहकर्म परिज्ञाता उसके सम्यक्जाननेवाला ऐसे तीन प्रकारका शास्त्रविधान है तहां करण जो कर्म-करनेकी साधनसामग्री जैसे यज्ञमें स्रुवादिक युद्धमें शस्त्रादिक कर्म जो करना होय कर्त्ता करनेवाला ऐसे तीनि प्रकारका कर्मके वास्ते संग्रहहै अर्थात् इनहीसे होसकेगा इनविनानहीं ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्तेति त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

दोहा–त्रिविधिहोतगुणभेदते, ज्ञानकर्मकर्त्तार ॥
गुणसंख्यामेएकहै, जैसेसुनियाकार ॥ १९ ॥

ज्ञान कर्म और कर्त्ता ऐसे ये गुणभेदकरके सांख्यशास्त्रमें तीन प्रकार-हीके कहेहैं उनकोभी यथावत् सुनो ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥ २० ॥

दोहा–जोकरिदेखेजीवमें, अविनाशीइकभाय ॥
न्यारेमैंन्यारोनहीं, सात्विकज्ञानबताय ॥ २० ॥

जिस ज्ञानकरके ब्राह्मणक्षत्रियादि विभागयुक्त सर्वभूतोंमें विभाग रहितै याने आत्मा सर्वमें समानहै ऐसा अविनाशी एक भावको देखताहैं उसै ज्ञानको सात्विक जानना ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

दोहा–नानाभाइनमैंलखे, न्यारोन्यारोज्ञान ॥
भिन्नलखेसबजीवकौं, राजसुजानसुज्ञान ॥ २१ ॥

और जो सर्वभूतोंमें अनेक ब्राह्मणादिक छोटेबडे उत्तम मध्यम भेदयुक्त आत्मनकोभी उत्तम मध्यमन्यारेन्यारे जानताहै ऐसा जो न्यारेपनेकरके जो ज्ञानहै उस ज्ञानको राजस जानो ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

दोहा–पूरनजानेएकमें, विनकारनकेमित्त ॥
तत्वअर्थबिनअल्पअति, तामसज्ञानसुनित्त ॥ २२ ॥

जोकि एकही कर्ममें सक्त याने आसक्त सर्वफलयुक्त जानै और वह निरर्थ होय कारणकि, जिसमें तत्वार्थ नहीं और तुच्छ याने भूतादि आराधनरूप ज्ञान सो तामस कहाहै ॥ २२ ॥

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥

अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

दोहा—संगरागअरुद्वेशविनु, नियतकर्मजोहोइ ॥
तजिफलइच्छाकीजिये, सात्त्विककर्मसुजोइ ॥ २३ ॥

जो कर्मफलकी इच्छा न करने वालेने नियत याने कर्त्तव्य फलासंग-रहित और रागद्वेषविना किया होय सो सात्त्विक कहा है ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

दोहा—जोकीजैकरिकामना, कैधौंकरिअहंकार ॥
जामेंश्रमहैअतिघनो, सोराजसनिरधार ॥ २४ ॥

जो बहुत परिश्रमयुक्त कर्म कामनाकी प्राप्ति इच्छाकरके अथवा फिर अहंकारसहित कियाहोय सो राजस कहा है ॥ २४ ॥

अनुबंधं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारंभते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

दोहा—पौरुषहिंसाशुभअशुभ, द्रव्यखर्चनजुविचार ॥
जोकीजैअज्ञानते, तामसकर्मनिहार ॥ २५ ॥

कर्मके परिणामका दुःख द्रव्यादिकका क्षय उसकर्ममें प्राणी पीडा और आपके पुरुषार्थको न देखिके मोहसे जो कर्म आरंभ कियाजाता है सो तामस कहाता है ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते २६

दोहा—धरिधीरजउत्साहको, तजैसंगअहंकार ॥
निर्विकारसिद्धिहिलहै, सात्त्विककर्मकरतार ॥ २६ ॥

जो पुरुष कर्म फलासक्तिरहित मैं कर्त्ता हौं ऐसे न कहनेवाला धीरज और उत्साहयुक्त सिद्धि और असिद्धिमें निर्विकारहोय सो कर्ता सात्त्विक कहाता है ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

दोहा–रागीचाहतकर्मफल, लुब्धकहिंसकहोइ ॥
हर्षशोकसंयुतअशुच, राजसकर्त्तासोइ ॥ २७ ॥

जो कर्ममें आसक्त कर्मफलके चाहनेवाला लोभी याने कर्ममें यथार्थ खर्चका न करनेवाला प्राणिपीडा करनेवाला अपवित्र हर्षशोकयुक्त सो कर्त्ता राजस कहा है ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

दोहा–सुधिबिनुरहेविवेकबिनु, शठआलकसीनित्त ॥
सबहीकीनिंदाकरै, अरुविषादजुतचित्त ॥ १ ॥
थोरेदिनकेकामको, बहुतलगावैवार ॥
ताहीसैसबकहतहै, यहतामसकरतार ॥ २ ॥ २८ ॥

जो शास्त्रोक्त कर्मके अयोग्य विद्याहीन अनम्र मारणादिकर्म तत्पर ठग आलसी विषाद करनेवाला और घडीकेकाममें एकदिन बितानेवाला सो कर्त्ता तामस कहाता है ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

दोहा–बुद्धिधीरजकेभेदत्रय, तीनहूँगुणनअशेष ॥
पृथक्पृथक्तिनकोकहौं, अर्जुनसुनहुविशेष ॥ २९ ॥

हे धनंजय ! संपूर्णपनेकरके मेरा कहाभया न्यारान्यारा गुणोंकरके तीनिप्रकारकी बुद्धिका और धीरजका भेद सुनो ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ३०

दोहा–काजअकारजभयअभय, औरप्रवृत्तिनिवृत्ति ॥
जानैबंधनमुक्तिजो, सात्त्विकबुद्धिकीवृत्ति ॥ ३० ॥

हेपार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिको और निवृत्तिको कार्य अकार्यको और भय अभयको बंधको और मोक्षको जानती है सो सात्विकी ॥ ३० ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

दोहा-धर्मअधर्मनिकोलखै, काजअकारजजानि ॥
जैसेहूतैसेगनैं, बुद्धिराजसीमानि ॥ ३१ ॥

हेपृथापुत्र! जिस बुद्धिकरके धर्मको और अधर्मको तैसे कार्यको और अकार्यकोभी उलटा जानै सो बुद्धि राजसी ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

दोहा-जानैपापहिपुण्यकरि, दंभअज्ञानीहोय ॥
लखैअर्थविपरीतसब, बुद्धितामसीसोय ॥ ३२ ॥

हेपार्थ! जो बुद्धि अज्ञानकरके ढकीभई अधर्मको धर्म ऐसा मानै और सर्व अर्थोंको उलटेमानै सो तामसी ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ३३॥

दोहा-जासोंइंद्रियरोकिये, चित्तक्रियाअरुप्रान ॥
योगयुक्तिनिहचलमहा, धीरजसात्त्विकजान ॥ ३३ ॥

हेपार्थ! जिस अखंडमोक्षसाधनरूप धारणाकरके योगबल से मन प्राण-और इंद्रियनकी क्रियोंको धारणकरै सो धारणा सात्विकी ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते नरः ॥
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

दोहा-धर्मअर्थअरुकर्मको, जोधारतुहैआय ॥
चाहेफलहिप्रसंगते, धीरजराजसुभाय ॥ ३४ ॥

हेपार्थ! फलकी इच्छाकरनेवाला पुरुष फलइच्छाप्रसंगसे जिस

धारणाकरके धर्मअर्थकामोंको धारणकरै सो धारणा राजसी ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा तामसी मता ॥ ३५ ॥

दोहा–जोभयशोकविषादमद, सपनेमोठहरात ॥
दुष्टबुद्धिछाँडैनहीं, धीरजतामसजात ॥ ३५ ॥

दुष्टबुद्धि पुरुष जिस धारणाकरके स्वप्न भय शोक विषाद और मद इनको नहीं त्यागता है सो धारणा तामसी मानते हैं ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥३६॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखं सात्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

दोहा–अबअर्जुनमोपैसुनो, सुखकैतीनिप्रकार ॥
जाकेअभ्यासहिकिये, दुखकोहोइनिवार ॥ ३६ ॥
पहिलेतौविषसोलगै, बहुरिअमृतसोजोय ॥
सोसुखसात्विकहैकह्यो, बुधिप्रसादतेहोय ॥ ३७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब सुखभी तीनप्रकारका मेरेसे सुनो सो ऐसे कि, जिस सुखमें अभ्यासकरनेसे मन रमता है और दुःखकानाश होता है जो उसके प्रथम विषतुल्य अंतमें अमृततुल्य सुख वह आत्मबुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न सुख सात्विक कहा है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

दोहा–इंद्रियविषयसँयोगतें, पहिलेअमृतसमान ॥
पाछेजोविषसौलगै, सोराजससुखजान ॥ ३८ ॥

जो विषयेंद्रियके संयोगसे प्रारंभमें अमृततुल्य अंतमें विषतुल्य सो सुख राजस कहा है ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

दोहा-पहिलेअरुपाछेसुखद, मोहितकरैजुदेह ॥
आलसनिद्रातेउठै, तामससुखहैएह ॥ ३९ ॥

जो प्रारंभमें और अंतमेंभी आपका मोहक सो निद्रा आलस और प्रमादसे उत्पन्न सुख तामस कहाहै ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

दोहा-सोपुहमीमैंनहिंकछु, सुरमेंअरुआकाश ॥
सत्त्वरजोइनतीनोंगुननि, बँध्योनमायाफास ॥ ४० ॥

जो वस्तु प्रकृति से उत्पन्न इन सत्वादि तीन गुणोंकरके मुक्त होय सो पृथिवीमें अथवा स्वर्गमें अथवा फिर वहांही देवनमें नहीं है ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

दोहा-द्विजक्षत्रियअरुवैश्यके, औरशूद्रकेकर्म ॥
निजस्वभावगुणसोंभये, न्यारेन्यारेधर्म ॥ ४१ ॥

हेपरंतप ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके और शूद्रोंके स्वभावसे उत्पन्न गुणोंकरके कर्म न्यारेन्यारे किये हैं ॥ ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

दोहा-शमअरुदमतमसोचपुनि, सरलताजुअरुशांति ॥
आस्तिकज्ञानविज्ञानयह, ब्रह्मकर्मकीभाँति ॥ ४२ ॥

शम जो बाह्यइंद्रियोंका संयम दम अंतःकरणका संयम तप शास्त्रोक्तव्रतादिक शौच बाह्य और आभ्यंतर क्षमा और सरलता ज्ञान स्वस्वरूप

परस्वरूपका जानना विज्ञानं जो स्वरूपज्ञानभये पर ईश्वरभक्तिकरना आस्तिक्यं जो वेदशास्त्रवाक्योंमें विश्वास ये ब्राह्मणके कर्म स्वभावहीसेहैं ॥ ४२॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

दोहा–सूरतेजधीरजचतुर, युद्धनमाँझपराय ॥
देहठकुरईसोरहै, क्षत्रीकर्मस्वभाय ॥ ४३ ॥

शूरपना तेज याने जिससे दूसरेडरैं धीरज चतुराई और युद्धमें भागनां-नहीं उदारता और प्रजाको स्वाधीन रखना यह क्षत्रियका कर्म स्वभावजहै ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

दोहा–खेतीगोरक्षावनिज, वैश्यकर्मयेजानि ॥
सबहीकीसेवाकरे, शूद्रकर्मयेजानि ॥ ४४ ॥

खेती गाइपालना वणिजकरना यह वैश्यकर्म स्वभावसे हैं तीनों वर्णकी सेवारूप कर्म शूद्रका स्वभावसे है ॥ ४४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

दोहा–अपनेअपने कर्मते, सिद्धिलहैसबकोइ ॥
सोविधिअबमोपैंसुनै, कर्मसिद्धिजोहोइ ॥ ४५ ॥

ऐसे आपआपके कर्ममें तत्परभयाहुआ मनुष्य सिद्धिको याने मोक्षको प्राप्तहोताहै स्वकर्मनिष्ठ पुरुष जैसें मुक्तिको पाता है सो सुनो ॥ ४५ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६ ॥

दोहा-जातजीवउपजातसब, जिनकीनोविस्तार॥
कर्मकरेताकोंभजै, सिद्धिलहैनरसार॥ ४६॥

जिस ईश्वरसे भूतप्राणिनकी उत्पत्ति रक्षणहै जिसकरके यह सर्व व्याप्त है उस ईश्वरको आपके स्वभावज कर्मकरके पूजिके मनुष्य मोक्षको प्राप्तहोताहै॥ ४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्॥
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ ४७॥

दोहा-नीकेहूपरधर्मते, विगुणभलोनिजधर्म॥
कछूपापपावैनहीं, करतआपनोकर्म॥ ४७॥

अतिउत्तम परधर्मसे आपकाधर्म गुणहीनभी कल्याणकारक है आपके जातिविहित कर्म करताभया पापको नहीं प्राप्तहोताहै तात्पर्य तुह्मरा हिंसात्मकभी धर्म है तो भी तुह्मारा कल्याण उसीसे है॥ ४७॥

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत्॥
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ ४८॥

दोहा-दोषसहितनिजकर्मते, रहैनकोऊत्यागि॥
दोषभरेआरँभसहित, धूमसहितज्योंआगि॥ ४८॥

हेकुंतीपुत्र! दोषयुक्तभी आपकेवर्णोचित धर्मको न त्यागना क्योंकि सर्वज्ञानकर्मादिक आरंभ दोषकरके धूवाँकके अग्नि ऐसे युक्त हैं॥ ४८॥

असक्तबुद्धिःसर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः॥
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥४९॥

दोहा-लगनबुद्धिबहुनहिकरै, जीतेमनुतजिआस॥
परमसिद्धिनिहकर्मकी, पावैकरिसन्यास॥ ४९॥

सर्वकर्मोंमें बुद्धिको आसक्त न करनो मनको वशकिये भये वांछारहित पुरुष परम नैष्कर्म्यसिद्धिको याने आत्मज्ञानको फलत्यागकरके प्राप्तहोताहै॥ ४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽप्नोति निबोध मे ॥
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

दोहा—सिद्धिपाइपरब्रह्मकी, जैसेपावैसार ॥
कहौंसुहौंसंक्षेपसो, निष्ठाज्ञानअपार ॥ ५० ॥

हे कुंतीपुत्र ! उस आत्मज्ञानको प्राप्तभयाहुआ जैसे ब्रह्मको प्राप्तहोताहै तैसे संक्षेपकरके मेरेसे सुनो जो ध्यानात्मज्ञानकी परम निष्ठाहै याने उपायकी सीमाहै ॥ ५० ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

दोहा—युक्तरहैबुधिसिद्धिमें, धीरजसोमनुधारि ॥
शब्दआदिविषयनतजै, रागद्वेषकोमारि ॥ ५१ ॥
रहैदुर्योएकांतमें, लघुभोजनमनुजीति ॥
ध्यानयोगतत्परसदा, यहवैरागकिरीति ॥ ५२ ॥
क्रोधपरिग्रहकामबल, दर्पऔरअहंकार ॥
ममतातजिनिर्मलरहैं, शांतब्रह्ममयसार ॥ ५३ ॥

सो जैसे कि, शुद्धबुद्धिकरके युक्त और धारणासे मनको वश करके शब्दादिक विषयोंको त्यागिके और रागद्वेषोंको त्यागिके एकांत बैठा-भया अल्पाहारि शरीर वाणी और मनको वशकियेभये नित्य ध्यानयोग-परायण वैराग्यको धारणकियेभये अहंकार बल दर्प काम क्रोध ममता इन सबको त्यागिके निर्मम शांत ऐसा पुरुष आत्मज्ञानमय होता है॥ ५३॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

दोहा-ब्रह्मभयोपरसन्नमन, सोचकरैनहिंचाह ॥
सबजीवनकोसमलखै, पावैभक्तिप्रवाह ॥ ५४ ॥

ऐसे आत्मज्ञानमयभयाहुआ प्रसन्नमनयुक्त न कोई वस्तु मेरे सिवाय जोगई तौ उसको न शोचताहै न चाहताहै सर्वभूतोंमें समदृष्टि भयाहुआ अतिउत्तमं मेरी भक्तिको प्राप्त होताहै याने सर्व जगत्को मेरे शरीरभूत मेरी परमविभूति जानिके पक्षपातरहित सर्वमें मेरेहीको देखताभया मेराही स्मरण उनमें करताहै, कि, ये सब तेरे स्वामिके हैं यही परमभक्ति है ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

दोहा-मोकोजानेभक्तिकरि, जितनोहोजाभाइ ॥
मोहिंजानिकेतत्त्वसों, मेरीभक्तिकराइ ॥ ५५ ॥

मैं जितना और जो हौं तितना और तैसा मेरेको भक्तिकरके निश्चय-पूर्वक जानताहै फिरि मेरेको निश्चयपूर्वक जानिके मेरेहीको उसपीछे प्राप्तहोताहै ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

दोहा-मोकर्मनिकोंनितकरै, मेरोआश्रयपाइ ॥
मोप्रसादतेसोतरै, अक्षयपदवीजाइ ॥ ५६ ॥

मेरा आश्रितजन सर्वलौकिक वैदिक कर्मनकोभी सदा करता भया मेरे अनुग्रहसे सनातन नाशरहित पदको प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

दोहा–मनसोंमोमेकर्मधरि, मोतत्परतालेहु ॥
बुद्धियोगकोसेइकरि, मोहीमेंचितदेहु ॥ ५७ ॥

मेरे परायण भयेहुये चित्तकरके सर्वकर्मोंको मेरेमें स्थापितकरके याने मेरे अर्पणकरके ज्ञानयोगका आश्रयकरके निरंतर मेरेमें चित्तको लगायेभये स्थित रहो ।। ५७ ।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

दोहा–मोप्रसादतेदुर्गसब, तरिजैहैअनियास ॥
अहंकारतेकिनुसुनै, लहिहैतूजुनिवास ॥ ५८ ॥

मेरेमें चित्तलगायेभये मेरे अनुग्रहसे सर्वसंसारदुःखोंको तरोगे जो कदाचित् तुम अहंकारसे मेरा उपदेश न सुनोगे तो नष्ट होउगे ॥ ५८ ॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥
मिथ्यैव व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ५९ ॥

दोहा–लरोंनहींजोतूकहत, अहंकारकोमानि ॥
यहतोकोअबझूठहै, प्रकृतिप्रेरिहैआनि ॥ ५९ ॥

जो अहंकारका आश्रयकरके न युद्धकरोंगा ऐसे मानोगे सोभी तुम्हारा निश्चय वृथा होयगा क्योंकि तुमको तुम्हारा जातिस्वभावही युद्धमें लगाय देयगा ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ६० ॥

दोहा–अर्जुनअपनेकर्मसों, तूराख्योहैमोइ ॥
करचौनचाहतमोहते, परवसिकरिहैसोइ ॥ ६० ॥

हे कुंतीपुत्र ! जो युद्ध मोहसे करनेको नहीं चाहते हो सो आपके क्षत्रियस्वभावजन्य आपके कर्मकरके बंधे भये परवशभयेभी करोगे ॥ ६० ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

दोहा-ईश्वरसबकेहीयमें, अर्जुनरहतसमूह ॥
जीवभ्रमावतहैसदा, करिमायाआरूढ ॥ ६१ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर आपकी मायाकरके यंत्र जो शरीर तिनमें रहेभये सर्व भूतोंको भ्रमाताभयाँ सर्वभूतोंके हृदयस्थलमें स्थित है ॥ ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ६२॥

दोहा-होइसदावाकेसरनि, अर्जुनतूसतिभाइ ॥
अविनाशीथिरशांतिपद, ताप्रसादतेपाइ ॥ ६२ ॥

हे भारत ! सर्वभावनाकरके उसीपरमात्माके शरणे होउ उसीके अनुग्रहसे परम शांति और सनातन स्थानको प्राप्तहोवोगे ॥ ६२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ॥
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

दोहा-ज्ञानकह्योतोकोजुमैं, जोजगपरगटनाहिं ॥
जोजानैसोईकरौ, याहिसजेजियमाहिं ॥ ६३ ॥

मैंने यह गोप्यसेभी गोप्य ज्ञान तुमको कहा इसको अच्छीतरहसे विचारके जैसा चाहो तैसा करो ॥ ६३ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

दोहा-जोकछुहैसबतेदुरचो, परमवचनमोमानि ॥
तूंदृढबुद्धिजुमीतुमो, तोहितकरतबखानि ॥ ६४ ॥

सर्वगोप्यनमेंभी अतिगोप्य मेरा परम वाक्य फिर सुनो मेरे अतिदृढ प्रिय हो तिससे तुमको यह हित उपदेश करताहौं ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

दोहा-मोकोतजितूसत्ययह, नमिमोसेमनराखि ॥

अंतसमैहौंमोहिमें, धारतुहैयहसाखि ॥ ६५ ॥

मेरेमें मनको लगावो मेरे भक्त होउ मेरा पूजनकरनेवाले होउ मेरेको नमन करो ही मेरेको प्राप्तहोउंगे तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हौं क्योंकि मेरे प्रियहो ॥ ६५ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥६६॥

दोहा—सबधर्मनिकोत्यागिकै, मोशरनहिंतूआइ ॥
दूरिकरौंयापापहौं, शोकतजैयाभाइ ॥ ६६ ॥

हे अर्जुन ! तुम सर्वधर्मोंको परित्यागिके याने सर्वधर्मोंके फलको त्यागिके अर्थात् "यत्करोषियदश्नासि" "इत्यारभ्यतत्कुरुष्वमदर्पणं" इस रीतिसे मेरे अर्पणकरके मुख्य मेरे शरण प्राप्त होउ अर्थात् " स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिंविंदतिमानवः " इसप्रमाणसे मेरेको पूज्य और मेरेको प्राप्य जानिके मेरी आज्ञा करो याने मेरा पूजन जानिके स्वधर्मरूप युद्धकरो मैं तमको इन भीष्मादिकोंको युद्धमें मारने इत्यादिक सर्वपापोंसे मुक्तकरौंगा तुम मत शोचकरो यहां इसश्लोकमें कोई विद्वद्भूषण अर्थ करते हैं कि, चातुर्मास्ययाग श्राद्ध पितृतर्पणइत्यादिकर्मरूप धर्मोंको त्यागिके मेरे शरण होउ याने मेरेको और आपको एकही जानो इस एकताज्ञानरूप भक्तिकरो तब विचारना चाहिये कि, प्रथम तौ " उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः " इत्यादिप्रमाणसे जीवब्रह्मकी स्वरूपएकता नहीं होसकती है मुक्तभयेपरभी " ममसाधर्म्यमागताः " और " भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" तथा " निरंजनः परमं साम्यमुपैति " इत्यादिक गीता ब्रह्मसूत्र और श्रुति प्रमाणसेभी भोगादिकमें समता होती है एकता नहीं जहां एकताभी कही है तहां अंतर्यामीभावसे अथवा " द्वासुपर्णा " इत्यादिश्रुतिप्रमाण सखापनसे कही है दूसरे ' भज सेवायां ' धातुका भक्तिशब्द होताहै भक्ति याने सेवा सोभी एकतामें बननेकी नहीं इससे जीवपरमात्मासे न्यारे परमात्माके स्वाधीन हैं यह सिद्धभया तब जो अर्थकिया कि, मेरी और आपकी

एकतारूपभक्तिकरो सो यह अर्थ तौ सिद्धभया नहीं अब जो धर्मको त्यागनेका अर्थ किया तहां "धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामियुगेयुगे"। "श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः"। "स्वधर्मेनिधनंश्रेयः" इत्यादि वाक्योंमें विरोध आताहै इसवास्ते सर्वधर्मोंका फल त्यागिके निष्काम और ईश्वरपूजनरूप जानिके करना यही सिद्ध होता है यहां इसी अध्यायमें प्रमाण है "निश्चयंश्रृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥ त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःपरिकीर्त्तितः" यहांसे लेके "संगंत्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विकोमतः ॥ यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते" इत्यादि औरभी कहे हैं ग्रंथवढनेके भयसे नहीं लिखते हैं सुज्ञजन इतनेहीमें समुझिके धर्माचरण करेंगे ॥ ६६ ॥

इदं ते नातपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन ॥
नचाऽशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ ६७॥

दोहा-जाकेतपनहिंभक्तिनाहिं, औशुश्रूषानाहिं ॥
तासोंतूयहजनिकहै, मोदोषीजगमाहिं ॥ ६७ ॥

हे अर्जुन ! जिसने तप न किया होय तथा मेरा और मेरे जनोंका भक्त न होय और जो गीताउपदेष्टाकी सेवा न करै और जो मेरी निंदा करै उसको तुम न कहना ॥ ६७ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

दोहा-मोभक्तिनसोंजोकरत, परमदुरचोयहज्ञान ॥
सोमेरीभक्तिहिलहै, मोमैंरहैनिदान ॥ ६८ ॥

जो इस परमगोप्यगीता शास्त्रको मेरे भक्तोंमें प्रसिद्ध करैगा वह मेरी परमभक्तिकरके मेरेहीको प्राप्तहोगा इसमें संशय नहीं ॥ ६८ ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

दोहा-मोकोंप्यारोबहुतवह, हौंप्यारोहौंताहि ॥
वहमोराखतहीयमें, हौंराख्योहियमांहि ॥ ६९ ॥

उस गीताको भक्तोंमें प्रसिद्धकरनेवालेसे अधिक मेरा प्रियकारक पृथिवीमें दूसरा मनुष्योंमें न है और न उसकी बरोबर और मेरेको प्रिय होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

दोहा--धर्मवादजोहमकियो, पढैजुकोऊजानि ॥
ज्ञानयज्ञतिनहीयज्यो, यहमेरोमनमानि ॥ ७० ॥

जो मेरे तुम्हारे धर्मवर्द्धक संवादरूप गीताका अध्ययन करेगा उस करके मैं ज्ञान यज्ञसे पूजित होउंगा ऐसा मैं मानता हौं ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयुश्च शृणुयादपि यो नरः ॥
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ७१

दोहा--श्रद्धायुतदोषनविना, याहिसुनैजोकोइ ॥
पुण्यवंतलोकनिलहै, मुक्तिजुताकोहोइ ॥ ७१ ॥

जो निंदारहित श्रद्धायुक्त श्रवणभी करेगा सोभी संसारसे मुक्त होके पुण्यकर्म करनेवालोंके लोकोंको प्राप्त होयगा ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

दोहा--चित्तएकाकीह्वैसुन्यो, तैंअर्जुनयहधर्म ॥
मिट्योमोहअज्ञानतम, औरछुटयौचितभर्म ॥ ७२ ॥

भगवान् पूंछते हैं कि, हे पृथापुत्र धनंजय ! इस ज्ञानको तुमने एकाग्रचित्तसे सुना कि नहीं जो सुना तो अज्ञानजन्य मोह तुम्हारा नष्ट भया कि नहीं सो कहो ॥ ७२ ॥

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

दोहा--मोहूंयोंआईसुरति, एहोश्रीभगवान ॥

भयोदृग्संदेहअव, तवआज्ञापरवान ॥ ७३ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुनिके अर्जुन कहते हैं कि, हे अच्युत! तुम्हारे अनुग्रहसे मोह नष्टभया और ज्ञान प्राप्तभया अव संदेहरहित स्थित हो आपका वचन जो स्वधर्मरूप युद्ध करनेकी आज्ञा सो करौंगा ॥ ७३ ॥

संजय उवाच।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौपमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

दोहा-हरिअर्जुनकीवातए, सुनीजुसैयाभाइ ॥
अचिरजरूपअनूपअति, रोमहर्षचितचाइ ॥ ७४ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि, हे राजन्! ऐसा यह श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुनका संवाद अतिअद्भुत रोमांचकारक मैं सुनताभया ॥ ७४॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

दोहा-परमगुह्योमतयहजुहै, सुनोव्यासपरसाद ॥
योगेश्वरश्रीकृष्णजु, निजमुखकियोविवाद ॥ ७५ ॥

मैं यह अतिगोप्य योग कहतेभये योगेश्वर श्रीकृष्णके मुखसे वेदव्यासजीके अनुग्रहसे सुनताभया ॥ ७५ ॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

दोहा-वारवारसुमिरतजुहौं, यासंवादहिराज ॥
हरपहोतमोकोंमहा, अतिपवित्रकेसाज ॥ ७६ ॥

हे राजन्! इस श्रीकृष्ण और अर्जुनके अद्भुत पुण्यदायक संवादको सुमिरि सुमिरिके वारंवार हर्षित होता हौं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनःपुनः ॥७७॥

दोहा-अद्भुतरूपश्रीकृष्णको, सुमिरसुमिरहोंताहि ॥

हर्षहोतमोकोंबहुत, विस्मयकोनिरवाहि ॥ ७७ ॥

हेराजन् ! उस अद्भुतभगवान्के रूपकोभी सुमिरिसुमिरिके मेरे बडा विस्मय होता है और वारंवार हर्षित होता हौं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यास योगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा–योगेश्वरश्रीकृष्णजु, अर्जुनहैजाठौर ॥
तहाँविजयअरुनीतिहै, अष्टसंपदाऔर ॥ ७८ ॥
यहगीताअद्भुतरतन, श्रीमुखकियोवखान ।
बारबारनिरधारकिय, पराभक्तिकोज्ञान ॥
भक्तिवश्यश्रीकृष्णजु, यहकीनोनिरधार ।
करैभक्तइच्छासबै, यहैवेदकोसार ॥

हे राजन् ! जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहां अर्जुन धनुषधारी तहांही अचल संपदा अचलविजय अचलवैभव और अचलनीति है यह मेरा निश्चय मत है ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीताऽमृततरंगिण्यांअष्टादशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १८ ॥

अंबराब्ध्यंकभूसंख्येविक्रमार्कस्यसंवति ॥ माघमासेदलेशुभ्रेद्वितीयायां- तिथौबुधे ॥ १ ॥ इयंसंपूर्णतांयातागीताऽमृततरंगिणी ॥ श्रीमद्भागवताचा- र्यानुग्रहात्सगुरुर्मम ॥ २ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–मुंबई.